राष्ट्रीय एकता के महान शिल्पी



जगदीश 'विद्रोही'

राष्ट्रीय एकता के महान शिल्पी

जगदीश विद्रोही

हिन्दी पॉकेट बुक्स
(हिन्दी की लोकप्रिय पॉकेट बुक्स के प्रकाशक एवं विक्रेता)
ई-५/२०, कृष्णा नगर, दिल्ली-११००५१

प्रकाशक : हिन्दी पॉकेट बुक्स
ई-5/20, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051
फोन : 2249650

प्रथम संस्करण : 1995

मूल्य : 20.00

मुद्रक : प्रेम प्रिंटर्स द्वारा शान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

दो शब्द

सन् 1947 में भारतीय जनता ने विदेशी दासता की बेड़ियाँ तोड़कर आजादी की लड़ाई जीत ली मगर अंग्रेजों ने भारत छोड़ने से पूर्व यहाँ साम्प्रदायिकता की आग भड़का देश को दो टुकड़ों में ही नहीं वरन् दो धर्मों-हिन्दू और मुसलमानों—में कृत्रिम विभाजन करने का सफल प्रयास किया।

अखंड भारत की शांतिप्रिय धर्मनिष्ठ जनता अवाक्-हतप्रभ देखती रही जब देश में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे-फसाद हुए। क्योंकि संसार का कोई धर्म हिंसा, हत्याएँ, बलात्कार, आगजनी, आतंक और लूट-मार की अनुमति किसे कब देता है ?

अहिंसा के मसीहा रामभक्त राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने धर्म को राजनीति का अंग मानते हुए सर्वधर्म-समभाव के सिद्धांत को आजीवन अपनाया और धर्महीन राजनीति का कभी समर्थन नहीं किया। सम्भवतः वे महामात्य चाणक्य के विचारों के पूर्णतया कट्टर समर्थक थे—"धर्म राष्ट्र के अभ्युदय का अमोघ साधन है। किसी भी दशा में न तो धर्म का निषेध करें और न कराएं। धर्म की रक्षा की गई तो निश्चित है धर्म भी अपनी रक्षा करने वालों की रक्षा करता है। इसके ठीक विपरीत जब भी धर्म का नाश किया जाता है तो धर्म भी अपनी उपेक्षा करने वालों का सर्वनाश कर डालता है।

इतना ही नहीं, उनकी पैनी दृष्टि जैसे स्वामी विवेकानन्द द्वारा की गई धर्म की व्याख्या से अछूती न बची थी—"मैंने अपने अल्प अनुभव से यही

सीखा है कि धर्म में जो लोग दोष और त्रुटियाँ देखते हैं, उसके धर्म कभी उत्तरदायी नहीं। कुत्सित कुटिल राजनीति यदि धर्म के नाम का अपहरण कर ले, तो यह दोष किसका है ?"

मगर उनके एक मात्र उत्तराधिकारी पं० नेहरू ने भारतीय संस्कारों एवं जीवन दर्शन के प्रतिकूल बापू की आकांक्षाओं के ठीक विपरीत पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित हो धर्म को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधक माना जिसके परिणामस्वरूप 1976 में संविधान के बयालीसवें संशोधित अधिनियम के अंतर्गत उद्देशिका में शब्द 'धर्मनिरपेक्ष' और जुड़वा दिया। उनका दिवास्वप्न था कि भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर उभरे।

आजादी मिले 47 वर्ष बीत गए, मगर आज संविधान में प्रतिरोपित अंग्रेजी शब्द 'सेक्यूलर' का अर्थ वोट की राजनीति में भारतीय गणराज्य 'पंथ निरपेक्ष' या 'सम्प्रदाय निरपेक्ष' है, 'धर्मनिरपेक्ष' नहीं है। इस संकीर्ण निरपेक्षता के समर्थक यह भूल जाते हैं कि धर्म इन्सानों को जोड़ता है, तोड़ता नहीं और जो तोड़ता है वह धर्म नहीं हो सकता है।

अंग्रेजी के 'सेक्यूलर' का शाब्दिक अर्थ है—क्षणभंगुर, पार्थिव या सांसारिक और शब्द 'सेक्यूलरिज्म' का मूल अर्थ है—'जीवन से धार्मिक तत्त्वों का उन्मूलन' अर्थात् उपर्युक्त शब्दों का हिन्दी रूपांतरण न 'पंथ-निरपेक्ष' या 'सम्प्रदाय निरपेक्ष' हुआ और न 'सर्वधर्म-समभाव'।

'धर्मनिरपेक्षता' का इतिहास नया नहीं, सदियों पुराना है। वास्तव में 'धर्मनिरपेक्षता' का जन्म सर्वप्रथम 1648 ई० में हुआ था जब गिरजाघरों की सम्पत्ति को राजकीय कोष में हस्तांतरित करवा लिया गया था।

धर्म का ज्वालामुखी अभी शांत होकर थमा भी न था कि देश में भ्रष्टाचार का भूत सर्वव्यापी होकर अपना तांडव नृत्य दिखला रहा है। देश में हर नागरिक, न्यायाधीश, नेता-अभिनेता, शिक्षक, डाक्टर, इंजीनियर, पत्रकार, चित्रकार, अधिकारी और कर्मचारी सभी रिश्वत की दौड़ में अग्रणी रहकर कुर्सी हथियाने की चेष्टा में संलिप्त बेतहाशा भागे चले जा रहे हैं। राष्ट्र के कर्णधार, सांसद और विधायक पैसे के बल-बूते चुनाव जीत सिंहासन तक पहुँचते हैं और पदारूढ़ होते ही हर हथकंडे अपनाकर

अपना चुनाव-खर्च ही नहीं वसूलते बल्कि अपनी आने वाली कई पीढ़ियों का भविष्य उज्ज्वल कर डालते हैं।

सबल आज दुर्बलों के शोषण में जुटे हैं। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद के दिन तो लद गये, साम्यवाद और समाजवाद का मोह आवरण भी छूटने लगा है मगर पूँजीवाद का अजगर आज मानवता का खून पीने में संलग्न है। सम्प्रदाय रूढ़ियों में सिमटे जा रहे हैं, दया, करुणा, न्याय, त्याग, निष्ठा और नैतिकता का मानवहृदय से लोप होता जा रहा है। आज हर श्वास व्याकुल है—उसे मानवता की तलाश है, अपनी विरासत की तलाश है।

हर डगर पर बढ़ता क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद और आतंकवाद राष्ट्रीय अखंडता के लिए चिन्ता का विषय ही नहीं जीवन के हर मोड़ पर एक चुनौती बन गया है। भारत की सांस्कृतिक पहचान का अस्तित्व आज खतरे में है जिसकी गरिमामयी बुलन्दियों को शायर हाली ने अपने शब्दों में बखान किया था—

'वह दीने हिजाजी का बेबाक बेड़ा,
निशाँ जिसका अक्साए आलम में पहुँचा,
किये पारसे पार जिसने सातों समन्दर—
वह डूबा दहाने में गंगा में आकर।'

—जगदीश विद्रोही

3074, रामद्वारा
चर्खेवालान, दिल्ली-6

अनुक्रमणिका

महर्षि गौतम

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महर्षि जैमिनी द्वारा न्याय-दर्शन पहले मीमांसा के रूप में समन्वय साधन के लिए व्यवहार में आता था। उस समय तर्क और उसके नियम की संज्ञा ही न्याय के रूप में प्रचलित थी जिसे न्याय कहते थे। योग-सांख्य, वेदान्त और पूर्वमीमांसा के समान ही न्याय दर्शन में भी महर्षि गौतम ने जगत, जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप तथा एक-दूसरे से पारस्परिक सम्बन्ध तथा संयोग और समवाय पर विस्तृत विवेकपूर्ण विचार किया है।

सप्तर्षियों में महर्षि गौतम भी एक ऋषि माने जाते हैं जो न्याय-दर्शन के प्रवर्त्तक के रूप में विख्यात हैं। उनका कथन है—

'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभाव सिद्धिः।' (न्यायदर्शन 4/10)

अर्थात् इस शरीर के नाश हो जाने पर आत्मा नित्य होने के कारण अपने अस्तित्व में अवस्थित रहती है। उन्होंने मोक्ष को ही ध्येय तत्त्व माना और यह भी सिद्ध किया कि जीवात्मा नित्य निरन्तर अविराम गति से प्रकृतिमय नश्वर जगत् से दूर मुक्ति प्राप्ति के लिए प्रयत्नरत रहती है।

कहते हैं सर्वप्रथम इनका नाम था महर्षि अन्धतमा जो जन्म से ही अन्धे थे। अपनी तपस्या के दौरान इन्होंने स्वर्ग की गाय कामधेनु की बहुत सेवा की थी जिसने प्रसन्न होकर महर्षि के तम (अन्धकार) को हर लिया। इस प्रकार इनके नेत्रों में पुनः ज्योति आ गई और फिर इन्हें महर्षि गौतम के नाम से ही पुकारा जाने लगा।

उन्होंने स्पष्ट किया कि मिथ्या ज्ञान का उच्छेद तत्त्व ज्ञान से ही सुलभ

हो सकता है और मुक्ति केवल चार प्रकार के ज्ञान—तत्त्व, श्रवण, तत्त्वानुमान, तत्त्वज्ञानाभ्यास हैं, और अन्त में तत्त्व ज्ञान का अभ्यास करते-करते साक्षात्कार भी हो जाता है। न्यायदर्शन तर्क-प्रधान तत्त्व निर्णय की प्रणाली प्रस्तुत करता है जो जड़-अचेतन, भूत तत्त्व को भी सत् मानता है किन्तु उसे चेतन और आत्मा के अधीन कदापि स्वीकार नहीं करता। वे जड़ और अचेतन का भी अस्तित्व स्वीकारते हैं और जगत् को चेतन एवं नितान्त स्वतन्त्र मानते हुए उसे सत् किन्तु अणु समूह से सृजित बतलाते है। उन्होंने कहा कि अविद्या ही बन्धन है, उसका नाश केवल सत् के ज्ञान से ही किया जा सकता है। शरीर और आत्मा दोनों ही भिन्न हैं, और एक दिन शरीर-सम्बन्धी दुख और क्लेश स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं—चूंकि समस्त स्थूल पदार्थों के मूल उपादान कारण केवल सूक्ष्म परमाणु ही हैं।

न्याय सूत्र के रचयिता महर्षि गौतम एक धैर्यवान, धर्मनिष्ठ तपस्वी थे जो मिथिला में निवास करते थे। इसी संदर्भ में एक रोचक कथा बहुचर्चित है।

कहा जाता है कि ब्रह्मा जी के मन में इच्छा जाग्रत हुई कि विश्व का तमाम सौन्दर्य एकत्रित कर एक ऐसी सुन्दरतम कमनीय रूपसी निर्मित की जाए जिसके नख से शिख तक अभूतपूर्व रूप ही रूप प्रस्फुटित होता हुआ दृष्टिगोचर हो। मनोवांछित इच्छानुसार ब्रह्मा जी ने एक अभूतपूर्व मन-मोहक स्त्री की रचना कर डाली जिसमें सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य भरा था।

हल कहते हैं पाप को, उसमें हल का भाव होने के फलस्वरूप वह हल्य कहलाया और जिसमें पाप ही न हो उसका नामकरण उन्होंने अहल्या रखा। इस प्रकार ब्रह्मा जी द्वारा रचित निष्पाप उस कमनीय कन्या का नाम 'अहल्या' रखा गया जो पृथ्वी पर एक अत्यन्त ही सुन्दर मानुषी थी। इस कारण उसके रूप की चर्चा देखते-ही-देखते चारों दिशाओं में आग-की तरह फैल गई। सभी का ध्यान जब उसकी ओर जाता तो उनके मन में ऐसी कोमलांगी को प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा जाग्रत होने लगती। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और देवताओं के हृदय में भी एक क्षण को उसे प्राप्त करने का विचार हो उठता। इन्द्र तो उसके रूप को देखकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भगवान ब्रह्मा जी से उसे प्राप्त करने के लिए स्पष्ट रूप से

याचना भी की किन्तु उन्होंने ऐसा निवेदन तत्काल ठुकरा दिया। इन्द्र जी के स्वाभिमान को ठेस तो पहुँची किन्तु मौन रह जाना पड़ा, विवशता थी।

इधर महर्षि गौतम अत्यन्त ही कठोर तपस्या में लीन हो समाधिस्थ हो चुके थे जिनकी अटूट साधना से प्रसन्न हो भगवान ब्रह्मा ने उस मन-मोहक त्रैलोक्य सुन्दरी अहल्या को अपनी धरोहर के रूप में आश्रम में रखने का आग्रह किया। महर्षि गौतम को आग्रह ठुकरा देने का साहस भी न हुआ। इस प्रकार अहल्या को मुनीश्वर ने अपने आश्रम में रख उनके आदेश का पालन किया। उनका आदेश था कि यह धरोहर वे किसी भी समय वापस ले लेंगे। अहल्या महर्षि गौतम की भक्ति एवं सेवा में जुटकर अपना समय व्यतीत करने लगी और महर्षि उस मूल्यवान धरोहर का विशेष ध्यान रखते। आश्रम प्रवास में मुनिवर गौतम व अहल्या के बीच कभी भी किसी प्रकार के कटु सम्बन्ध नहीं रहे और न परस्पर एक-दूसरे के प्रति कभी बुरे विचार ही जाग्रत् हुए।

रात, दिन, सप्ताह और मास समय के चक्र में प्रवेश करते और फिर बसन्त के रंग-भरे मौसम में डूब कर वर्षों को पीछे छोड़ते चले जा रहे थे। जब महर्षि ने अपनी समाधि तोड़ी तो निश्चय किया कि भगवान को स्वयं ही उनकी धरोहर के संदर्भ में स्मरण करा देना उचित होगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि भगवान ने उनकी तपस्या भंग होने के कारण इस बीच टोकना उचित न समझा हो।

महर्षि गौतम ने तत्काल अहल्या सहित ब्रह्मा के चरणों में साक्षात उपस्थित हो उनकी धरोहर वापस करने की अपनी इच्छा प्रकट की। तब ब्रह्मा ने महर्षि के अपार संयम, तप और पवित्र भावों से प्रसन्न होकर उसे पत्नी के रूप में उन्हें स्वीकार करने की सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी। पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात् वे दोनों भगवान ब्रह्मा का आशीर्वाद ले आश्रम में लौट आए। इनसे महर्षि शतानन्द नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। भविष्य में जो राजा जनक के दरबार में राजपुरोहित बने।

अध्यात्म रामायण में गौतम के आश्रम का वर्णन मिलता है—

'इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गंगा समीपगम्।
गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्यास्थिता तपः॥'

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भी इस आश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है—

'मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः।
पुराणं निर्जनं रम्यं प्रपृच्छ मुनिपुङ्गवम्॥'

उपर्युक्त दोनों रामायणों में वर्णित आश्रम की प्राचीनता और न्यायशास्त्र की पूर्वकालीनता प्रमाणित हो जाती हैं। न्यायशास्त्र में महर्षि गौतम ने आप्त वाक्य को शब्द माना, और शब्द-प्रमाण दो बतलाए—दृष्टार्थक और अदृष्टार्थक।

जिस शब्द का अर्थ प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध हो उसे दृष्टार्थक और जिसका अर्थ अदृश्य हो उसे अदृष्टार्थक स्वीकार किया गया है।

'प्रमाण से प्रमेय स्थिर होने के कारण इसके 12 भेद होते हैं—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुख और अपवर्ग आदि।'

'इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, सुख, ज्ञान और आत्मा-जीवात्मा के लिंग होते हैं। चैतन्यपरक पदार्थ या ज्ञानस्वरूप वस्तु तत्त्व ही आत्मा है जो सभी इन्द्रियों की अधिष्ठाता है। इन्द्रियों का कोई भी कार्य जिसके अभाव में असम्भव है। आत्मा के दो रूप हैं—'जीवात्मा और परमात्मा।'

'जो चेष्टाएँ सुख, दुख एवं इन्द्रियों के भोग का आयतन दृष्टिगोचर होती हैं उन्हें न्यायशास्त्र में शरीर कहा है और उसे इन्द्रियों के भोग का साधन भी कहा जा सकता हैं।'

'क्षिति, जल, तेज, मरुत और व्योम के क्रम से घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् और श्रोतृ आदि इन्द्रियाँ हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द के भेद से अर्थ के 5 प्रकार होते हैं जबकि बुद्धि, ज्ञान और उपलब्धि केवल एक प्रकार के ही हैं। मन, आतम-गुण और ज्ञान—सुखादि होने के कारण समस्त इन्द्रियों के सहायक और सुख-दुःखादि का अनुभव कराते हैं।'

'दोष सदा व्यक्ति को बुरे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनके तीन भेद होते हैं—राग, द्वेष और मोह, इन्हीं के वशीभूत होकर वह कार्य करने में प्रवृत्त होते हैं।'

उन्होंने न्यायसूत्र में स्पष्ट किया है कि सूक्ष्म शरीर जब स्थूल शरीर

को परित्याग कर दूसरा शरीर धारण करता है तो उसे प्रेतभाव या पुनर्जन्म कहते हैं।

'इसी प्रकार हम दोष एवं प्रवृत्ति से उत्पन्न अर्थ को फल कहते हैं जो दो प्रकार का होता है—मुख्य और गौण। सुख-दुख के अनुभव को मुख्य फल कहते हैं जब कि सुख-दुख के साधन शरीर एवं इन्द्रियाँ गौण फल की श्रेणी में आते हैं।'

'दुख का लक्षण ही पीड़ा है, दर्द है लेकिन सुख और दुख का अंग एक है। अर्थात् सुख बिना दुख के रह ही नहीं सकता जो एक-दूसरे के पूरक हैं।'

न्यायशास्त्र में तीसरा पदार्थ संशय है जो एक धर्मी के विरुद्ध नाना धर्मों का ज्ञान उत्पन्न करता है। जो वस्तु मनुष्य में इच्छावश प्रवृत्त होती है उसे प्रयोजन कहते हैं अर्थात् ऐसी स्थिति में व्यक्ति अर्थ का लक्ष्य में रखकर किसी भी विषय की ओर जुट जाता है।

'जब तत्त्व ज्ञात न होने के कारण जानने की इच्छा के लिए मन प्रवृत्त होता है उस युक्ति को तर्क कहते हैं। इसी प्रकार पक्ष-प्रतिपक्ष द्वारा संशय उठाकर अर्थ का जब अवधारण करते हैं उसे निर्णय कहते हैं। अर्थ को बदलकर वादी के वचन का विघात करना छल कहलाता है। इसमें वादी के कहने का जो अभिप्राय हो उसके विरुद्ध अभिप्राय लेकर आक्षेप करना ही छल है।'

उन्होंने कहा कि इच्छा या कामना ही जन्म का हेतु है—

'वीतराग जन्मादर्शनात्।' (न्यायसूत्र 3/1/24)

'पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप ही संसार में शरीर की प्राप्ति होती है और यह जीवात्मा अपने अविद्यागत दोष के कारण ही दुख के चक्रव्यूह में फंस जाने के कारण भ्रमित हो चक्कर काटता रहता है—

'पूर्वकृत फलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः।' (न्यायसूत्र 3/2/60)

'अर्थात् उत्पत्ति एवं जन्म होना ही अपने-आप में दुख है। क्योंकि इसी के माध्यम से जीवन में अनेकों पीड़ाओं को झेलना पड़ता है, अनुभव करने पर बाध्य होना पड़ता है। इसलिए इससे मुक्ति के लिए जीवात्मा को मोक्ष की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है—

'विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः।'

इसीलिए प्रत्येक जीवात्मा को दोष-जन्य अविद्या का नाश कर इस जन्म के फलस्वरूप प्राप्त दुःखद बन्धनों से मुक्त होने के लिए मोक्ष का मार्ग ही श्रेय हो जाता है।

'देहादि इन्द्रिय में आत्मबुद्धि करना—मिथ्या ज्ञान है चूँकि इसमें सत् तत्त्व का अभाव होता है। इस ज्ञान को अर्जित करना ही आत्मज्ञान है, तत्त्वज्ञान है जिससे दुख की निवृत्ति होकर सदा के लिए मोक्ष के द्वार खुलते हैं। यह संसार ही मात्र एक दुःखालय है।'

'पवित्र जीवन जीने के लिए, पवित्र मन एवं सदाचार की अत्यन्त आवश्यकता है।'

'आत्मा का सद्ज्ञान हमेशा अहंकार का नाश करने वाला है। यदि जीवन में अहंकार न जन्मे तो दुख की प्रवृ ति न रहे और जीवात्मा को मुक्ति प्राप्त करना सरल और सहज हो जाये।'

महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में बल देकर स्पष्ट किया कि दुख जन्म लेने से ही उत्पन्न होता है—जन्म का कारण प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति का कारण दोष है और प्रवृत्तिमूलक दोष का कारण मिथ्या ज्ञान है। जब भी आत्मज्ञान के माध्यम से मिथ्या का नाश होगा, तभी अविद्यागत दोष का अंत होगा और प्रवृत्ति का नाश हो जाने पर ही जन्म का होना समाप्त होता है, पुनर्जन्म रुक जाएगा और दुख का अस्तित्व सदा के लिए मिट जाता है।

उन्होंने कहा—

'तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः।' (न्यायसूत्र 1/1/22)

अर्थात् मोक्षपरक आत्मज्ञान के उदय के लिए ईश्वर की कृपा अत्यंत ही सहायक सिद्ध होती है—

'स्वरूपेण व्यवस्थानमात्मनो मोक्षः।'

उपर्युक्त वर्णित 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से दुःख निवृत्ति होने के साथ जीवात्मा स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

'मत्तेभ कुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित् प्रचण्डमृगराज वधैर्ण्य दक्षाः।

किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कंदर्प दर्पदलनं विरलं मनुष्याः।'

एक दिन अपने आश्रम में महर्षि गौतम बड़ी गहरी नींद में आनन्द से सोए पड़े थे। आश्रम के बाहर एक पेड़ की टहनी पर चढ़ा मुर्गा तन्मयता से बाँग देकर प्रातःकाल के आगमन का संदेश दे रहा था।

किसी प्रकार की कोई भी आहट आश्रम से सुनाई न पड़ने पर वह मुर्गा टहनी से उड़कर मुंडेर के कोने पर आ बैठा। चारों ओर अपनी गर्दन घुमाकर स्थिति का जायजा ले उसने पुनः बाँग देनी शुरू की। बाँग का स्वर वायुमण्डल में गूंजने लगा। बांग के चीत्कार-भरे स्वर ने कुछ देर बाद महर्षि गौतम की नींद को तोड़ने में सफलता प्राप्त कर ली। वे अचानक हड़बड़ा कर पलंग से नीचे उतर कर खड़े हो गए। कुछ क्षण के अन्तराल पर पुनः मुर्गे का स्वर कानों में सुनाई पड़ा।

उस स्वर में लयात्मकता नहीं पर क्रमबद्धता थी। मुनिवर ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और अपने वस्त्र पहन गंगा स्नान के लिए आश्रम से बाहर निकल पड़े। पगडंडियों की टेढ़ी-मेढ़ी राहों से निकल उनके चरण मैदान की सुनसान सड़कों को पार करते हुए गंगा तट पर आ पहुँचे।

गंगा के किनारे वस्त्र उतार जब उन्होंने गंगा में प्रवेश किया तो मंझधार में पहुँचते-पहुँचते जल की शीतलता ने संशय में डाल दिया। उन्हें लगा—गंगा के निर्मल जल की हिलोरों में प्रातःकालीन उष्णता का पूर्णतया अभाव क्यों हैं?···वातावरण की गम्भीर नीरवता में ब्राह्ममहूर्त्त के आगमन के लक्षण अभी तक स्पष्ट क्यों नहीं हैं?···कहीं वे स्वप्न में गंगा-स्नान करने तो नहीं चले आए???

विधिवत् कार्यक्रमानुसार भ्रमित-चंचल मन से स्नान करने के पश्चात् गंगा से बाहर निकले, अपने वस्त्र पहन कर वे शीघ्रता से आश्रम की ओर लौट पड़े। शनैः-शनैः शंकालु पैरों की गति में निरन्तर तीव्रता बढ़ती चली गई। ज्यों-त्यों उस विकराल रात के गहन अन्धकार में उन्हें यह अनुभव होता गया—भोर का कहीं अता पता नहीं···लगता है आधी रात का प्रथम प्रहर ही अभी गुजरा है···मुर्गे के असमयिक बाँग लगाने के स्वर का रहस्य क्या है···?

सभी कुछ किसी छल का परिणाम है अथवा किसी अनहोनी का अपशकुन ?···अनुत्तरित प्रश्नों का चक्रव्यूह मस्तिष्क में तेजी से घूमने लगा तो चरणों की रफ्तार की गति बढ़ जाना स्वाभाविक था। हृदय में उठने वाले भूचाल के झटके रह-रहकर सहनशीलता के बाँध को तोड़ने का प्रयास करने लगे। अशान्त मन एक क्षण को बिखरने को हुआ।

महर्षि गौतम के खड़ाऊओं के पद-चापों की पगध्वनि आश्रम की मुँडेर पर बैठे मुर्गे ने जब सुनी तो पुनः बाँग देने का उपक्रम दोहराते हुए वहाँ से उड़ा और द्वार पर खड़े आम के वृक्ष पर आ बैठा। चिर परिचित-सी सुनाई देने वाली मुर्गे की चीत्कारपूर्ण 'कु···क···डूँ···कूँ···' जब मुनिवर के कानों में पड़ी तो उनके क्रोध का ज्वार जैसे उबाल खा गया। कन्धे पर पड़ी भीगी धोती दाहिने हाथ से खींच मंत्रोच्चारण करते हुए उन्होंने उस वाचाल मुर्गे पर फेंकी। भयातुर मुर्गा पेड़ को छोड़ उड़ना ही चाहता था कि अचानक उस स्थान पर विस्फोट सहित ज्वाला दहकी और मंत्र शापित उस पक्षी को अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होना पड़ा।

ऋषि के सम्मुख चन्द्रमा लज्जा और ग्लानि से सिर झुकाए कम्पित स्वर में बोला —'मुनिवर ! मैं तो निर्दोष हूँ—मुझे क्षमा कीजिए, मैंने कोई अपराध नहीं किया है।'

'क्या छल करना अपराध नहीं ?' गौतम ने प्रश्न किया।

'मैंने अपने स्वामी इन्द्र की आज्ञा का मात्र पालन किया है। जिसका निर्वाह करना मेरा धर्म था, कर्त्तव्य था।' चन्द्रमा ने अपने कथन को साहस बटोर कर पूरा किया।

'धूर्त स्वामी का आज्ञाकारी, सहयोगी, विवेकहीन होने के कारण शत-प्रतिशत तू दंडनीय है मूर्ख !' रोषपूर्ण स्वर में उन्होंने उत्तर दिया।

'मुनिवर ! आपके शाप से मेरा हृदय जला जा रहा है। मैं क्षमा याचना करता हूँ, मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए, प्रभु !'

'वाचाल चन्द्रमा ! यह असम्भव है। ब्रह्माण्ड पर जब तक जीवन है तेरा हृदय इसी प्रकार जलता रहेगा। इतना ही नहीं तू अपना उपेक्षित काला मुख कभी भी किसी को दिखलाने का साहस नहीं कर पायेगा··· अपनी अगाध शीतलता से जब भी तू किसी को आकर्षित कर प्रभावित

करने का अपनी ओर से प्रयास करेगा तो तेरे अपराधी दग्ध हृदय के वे दोषपूर्ण कलंकित काले धब्बे उसे स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेंगे और तब वह सशंकित उपेक्षित भाव से तुझे धिक्कारता हुआ घृणा से अपना मुँह फेर लेगा।···इस ब्रह्माण्ड पर जब भी कोई प्राणी उत्सुकतावश तुझे छूने का प्रयास करेगा तो उसके स्पर्श मात्र से तू पत्थर के समान जड़ हो जाएगा ···और इस प्रकार तू जीवित रहकर भी मृतप्राय ही बना रहेगा।'

उन्होंने उसे निकट ही खड़ा देख क्रोधित मुद्रा में धिक्कारते हुए पुनः दुत्कारा—'अरे पापी, कलमुँहे चन्द्रमा ! नीच, अब भी मेरे निकट मुँह बाये क्यों खड़ा है ? मेरे सामने से दूर चला जा···अदृश्य हो जा, अन्यथा···' कहते-कहते वे बाएँ मुड़कर आश्रम की ओर बढ़ गए। उनकी आँखों में जैसे रक्त का ज्वार उबाल खा रहा था।

आश्रम के द्वार के निकट पहुँच कर उन्होंने अपने दाएँ हाथ से कुंडी को स्पर्श ही किया था कि बड़े वेग से द्वार के दोनों कपाट खुले और अंधड़ सरीखा झंझावात का एक प्रबल झोंका उनकी आँखों में धूल झोंकता हुआ उस एकान्त वायुमण्डल में तैरता हुआ विलीन हो गया। महर्षि अपनी वेवश हथेलियों से आहत नेत्रों से चिपकी धूल निकालने में एक क्षण व्यस्त-से लगे किन्तु चरण न रुके।

महर्षि गौतम ने अपने भावावेश को संयत करते हुए कहा—'धूर्त ···छली ! कायरों की तरह मुँह छिपा कर मेरे द्वार से भागते हुए तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आ रही ?

'ओ कपटी इन्द्र, जिस भयभीत मुद्रा में तू पलायन कर भाग रहा है भविष्य में भी तू इसी प्रकार भागता ही रहेगा—अपने प्राणों की रक्षा के लिए, पद की गरिमा बचाने के लिए तू आजीवन आशंकित ही रहेगा। चैन और सुख की सांस कदापि नहीं ले पाएगा। हे पापी, वाचाल इंद्र ! जिस काम के वशीभूत हो तूने छल का सहारा ले एक नारी को पथभ्रष्ट करने का षड़यन्त्र रचा है, तो मैं शाप देता हूँ कि तेरा अपवित्र तमाम शरीर असंख्य योनियों के रूप में परिणत हो जाए जिससे लज्जावश तू समाज के सम्मुख कभी प्रकट होने का साहस न कर सके। आश्रम की परिधि से बाहर भागने से पूर्व एक बार मैं स्वयं उसी घिनौने रूप में तुझे

देख पाने का इच्छुक हूँ ।'

इस प्रकार शापित इन्द्र का समस्त शरीर क्षण में नारी की भगा-कृतियों से परिपूर्ण हो थर-थर काँपता हुआ महर्षि गौतम के नेत्रों से ओझल हो गया ।

तब व्याकुलता-भरे पदचापों से वे अपने शयन कक्ष की ओर मुड़ गए। चौखट के अन्दर प्रवेश करने पर महर्षि गौतम ने अधजले दीपक की लौ ऊँची उठाई ।

सुनहले प्रकाश की आलोकित रश्मियों से अलसाए, अस्त-व्यस्त, मन-मोहक-कामुक शरीर को अपने काले-काले कजरारे केशों की गहन ओट में छुपाती अहल्या अपने पलंग से नीचे उतर भूमि पर लड़खड़ाती-सी खड़ी हो हो गई किन्तु उसके चंचल-उनींदे नयनों ने जब अपने पति के विकराल रौद्र रूप को देखा तो एक कटे वृक्ष की तरह मूर्च्छित हो उनके चरणों में बिखर कर रुदन करती हुई सिसकियाँ भरने लगी—'स्वामी···मुझे··· क्षमा···कर दीजिए, आपके···छद्म रूप द्वारा···मुझ असहाय अबला··· को छला···गया ।'

'सम्भव है मेरा···छदम रूप···क्षण को विचलित तो तुम्हें कर पाता···किन्तु उस नीच कामुक पापी की कुत्सित गंध एवं स्पर्श एक पति-व्रता नारी को पथभ्रष्ट न होने देती ।'

'नाथ, विश्वास कीजिए···आपकी अहल्या निर्दोष है ।'

'काश ! यह सच होता·· आजीवन तुम्हारा मैंने विश्वास किया··· किन्तु···' क्रोधित महर्षि गौतम के आक्रोशपूर्ण नेत्रों में दावानल की तरह आग के शोले दहकने लगे। अपनी आवाज को पुनः संयत कर उन्होंने कहा —'किन्तु···आज अहल्या विश्वसनीय···रही नहीं·· वह पतिता है। सच तो···यह है कि तुमने देवताओं के राजा इन्द्र के गौरव से अभिभूत हो उसकी महारानी बनने का स्वप्न आँखों में संजो लिया था···अन्यथा बलात्कारी दुष्ट तुम्हारी स्वेच्छा बिना इस आश्रम से जीवित नहीं भाग सकता था।···और यह भी सच है कि अपने रूप के मद में···तुम्हारी अप-राधी मनोवृत्ति ने उसके समागम प्रस्ताव को स्वयं स्वीकार किया···और ···सम्भोगोपरान्त कृतज्ञता भी सुखद समागम हेतु तुमने अवश्य प्रकट की

···और इतना ही नहीं···उसे इस आश्रम से शीघ्रातिशीघ्र भाग जाने को भी तुमने ही प्रेरित किया···अन्यथा वह मेरी आँखों में धूल झोंककर जाने का यत्न न करता। तुम्हें स्वीकारना चाहिए कि तुमने विश्वासघात किया है···और एक नारी जब भी विश्वासघात करने के पश्चात उसे नकारने, छुपाने एवं झुठलाने का यत्न करे वह भी दंडनीय अपराध है। अतः मैं शाप देता हूँ कि तुम पाषाण हो जाओ और आज से यह तुम्हारा सम्पूर्ण सौंदर्य तुम्हारे शरीर में ही न रहकर पृथ्वी-भर की स्त्री मात्र में बँट जाएगा।'

तत्काल शापित अहिल्या मूक पाषाण बनकर अदृश्य हो गई और ऋषि गौतम अपनी पत्नी का त्याग कर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने चल पड़े।

इसी प्रसंग का उल्लेख आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में इस प्रकार किया है—

मुनिवेशं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन,
मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतः हलात्।
अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठ कृतार्थे नांतरात्मना,
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रांमतः प्रभो।
आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात्,
इन्द्रस्तु प्रहसन् वाक्यमहल्या मिदमब्रवीत।
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम्,
एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रमोटजात् ततः।
ससंभ्रमात् त्वरन् राम शंकितो गौतम प्रति,
गौतमं स ददर्शाय प्रविशन्तं महामुनिम्।
देवदानवदुर्धर्ष तपोबल समन्वितम्,
तीर्थोदकपरिविलग्नं दीप्यमानमिवानलम्।
गृहीतसमिधं तत्र सकुशं मुनिपुङ्गवम्;
दृष्ट्वा सुरपति स्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत्॥

आदिकवि के अहल्या के चरित्र से मानवीय दुर्बलता की अभिव्यक्ति मिलती है जो इन्द्र के गौरव से प्रभावित हो समागम प्रस्ताव स्वीकारती है, सम्भोगोपरांत समागम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती हुई इन्द्र को वहाँ

से चले जाने को प्रेरित करती है जिससे यह कांड उसके पति गौतम से गोप-नीय रह सके। इन्द्र भी अपनी परितृप्ति का उल्लेख करता हुआ गौतम के भय से आश्रम से भागने का यत्न करता है। पकड़े जाने पर भयाक्रांत मुद्रा में कांप उठता है। शाप के अन्तर्गत अदृश्य हो जाने के लिए कहा है, पत्थर हो जाने के लिए नहीं। अर्थात् अहल्या अपना मुख दिखलाने योग्य नहीं रही थी।

रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास ने इसी प्रसंग को अपने रामचरित-मानस में अहिल्या-इन्द्र-समागम-कथा की चर्चा न करते हुए, विश्वामित्र से केवल इतना कहलवाया है—

'गौतम नारि शाप बस उपलदेह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर।।'

किन्तु इसी अनुमान की पुष्टि वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार होती है—जब राम अहल्या के आश्रम में प्रवेश करते हैं तो वह सदेह दिख-लाई पड़ती है—

'सा हि गौतम वाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह।
त्रयाणामपि लोकानां यावद् रामस्य दर्शनम्।।'

इस प्रकार जब श्री रामचन्द्र के चरणों की धूलि पाषाण तुल्य अहल्या पर पड़ती है तो वह पवित्र हो जाती है और फिर महर्षि गौतम उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार महर्षि गौतम का चरित्र अलौकिक है जिसमें त्याग, वैराग्य और तप का अभूतपूर्व संगम मिलता है।

भर्तृहरि

भारतवर्ष की मनमोहक उज्जयिनी नगरी में राजा गंधर्वसेन का शासन था। राज्य की प्रजा अपने राजा से अति प्रसन्न थी। राजा गंधर्वसेन के दो पुत्र हुए जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम हरि एवं कनिष्ठ विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ज्येष्ठ राजकुमार हरि बचपन से ही एकांतप्रिय, मृदुभाषी, शान्तिप्रिय एवं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उसकी रुचि राज-काज के बंधनों से मुक्त होकर साधु-संन्यासियों के उपदेशों और प्रवचनों को बड़े ध्यान से सुनने और आनन्द लेने में अधिक थी।

राजा गंधर्वसेन ने राजकुमार का ध्यान उस ओर से हटाने के लिए एक अत्यन्त ही असाधारण रूपमती राजकुमारी के साथ विवाह करा दिया। इस प्रकार राजा गंधर्वसेन की युक्ति के फलस्वरूप राजकुमार हरि कमनीय रानी के प्रेमपाश में बंधकर अपने पिता के साथ शासन संचालन में पारंगत हो एक सफल प्रजापालक बनने में सक्षम हो गए। अचानक गंधर्वसेन की मृत्यु हो जाने पर हरि ने उज्जयिनी के शासन की बागडोर अपने हाथों में सम्भाल ली। कुछ ही दिनों में राजा ने प्रजा का मन मोह लिया।

एक कुशल शासक होने के साथ ही साथ वे साहित्य और कला में विशेष रुचि लेते। उन्होंने अपने शासन काल में साहित्य और कला के विकास एव उत्थान के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय विद्वानों का स्पष्ट मत है कि भारतीय साहित्य में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम राजा भर्तृहरि ने ही अपने द्वारा रचित मार्मिक

सूत्र में किया था—

'साहित्य संगीत कला विहीन: साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः ।'

इस प्रकार संदेह नहीं कि उन्होंने अपने जीवन में अत्यन्त ही लगन, साधना एवं निष्ठापूर्वक साहित्य सृजन का कार्य कर प्रजा को अपने अनुभवों और ज्ञान देकर समाज को नई दिशा दी।

राजमहलों के दरबारियों ने एक दिन राजा को सूचित किया—एक योगीराज आपके दर्शनार्थ पधारे हैं और आपसे भेंट करने के इच्छुक हैं। महाराजाधिराज ने ससम्मान-आदरपूर्वक अपने कक्ष में उन्हें आसन ग्रहण करने का आग्रह किया, तब उन्होंने एकांत में भेंट करने की इच्छा प्रकट की। राजा के आदेशानुसार उस कक्ष से लोग बाहर निकल जाने के पश्चात् उन्होंने योगी से दरबार में आने का प्रयोजन जानने की इच्छा व्यक्त की।

योगीराज ने अपनी हथेली को आगे की ओर बढ़ा अपनी मुट्ठी खोलते हुए नम्रता से निवेदन किया—'राजन ! अत्यन्त कठिन साधना एवं तपस्या के पश्चात् मुझे यह 'अमरफल' प्राप्त हुआ है। यह 'अमरफल' व्यक्ति को मृत्युंजय एवं यशस्वी बनाने में सक्षम है। मेरी दृष्टि में आप एक निष्ठावान, त्यागी, नेक, कर्त्तव्यनिष्ठ और सदाचारी प्रजापालक हैं—इसलिए आपका जीवन मुझसे अधिक मूल्यवान है। मेरी हार्दिक मनोकामना है कि आप कृपया इसे ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करें।'

महाराजा योगीराज के आग्रह को न टाल सके। उन्होंने नत मस्तक हो कृपालु संन्यासी के चरण छुए। तत्काल संन्यासी ने राजा को आशीर्वाद दे अपना आसन त्याग दिया और महलों से निकल देखते-देखते ही बाहर खड़े दरबारियों की आँखों से ओझल हो गए।

महाराजा अपने शयनकक्ष में आ बड़े अशांत मुद्रा में पलंग पर लेट आगन्तुक सन्यासी के संदर्भ में सोचने लगे कि ऐसा अपरिचित त्यागी संन्यासी कौन था और यहाँ उसके आने का प्रयोजन? विस्मय-भरी दृष्टि से कभी-कभी वे अपनी हथेली खोल 'अमरफल' को घुमा-फिरा कर दीप-प्रकाश में उसकी उपयोगिता के रहस्यपूर्ण आँकड़ों में अपनी आँखों को उलझा कर अपनी सुध-बुध भुला बैठे थे।

सोचने-विचारने में संध्या कब किधर से आकर कहाँ चली गई महा-

राजा को ज्ञात ही न हुआ। करवटें बदलते रात ढल गई विश्रामकक्ष के पलंग पर किन्तु मुट्ठी में कसे अमरफल ने उनके उनींदे नेत्रों से जैसे नींद चुरा ली थी।

वे मौन पड़े थे विचारों के अथाह सागर में डूबते-उतराते तभी महारानी ने अपने दोनों बाहुपाशों में भर कर उन्हें मूर्छा से जगा आलिंगनबद्ध कर अपने आगमन का संकेत दिया और महके चुम्बनों की बौछार ने उनकी नींद अचानक तोड़ डाली।

महाराजा महारानी के असाधारण रूप और सौन्दर्य पर अत्यन्त ही मंत्रमुग्ध होने के कारण प्रभावित ही नहीं अटूट आस्था और प्रेम में सराबोर थे। ऐसे प्रेमपाश के अटूट बंधनों में जकड़े राजा ने रानी को सम्भोगोपरांत योगीराज से प्राप्त अमरफल की रहस्यपूर्ण उपयोगिता बयान कर उसे अपनी मुट्ठी से निकाल पकड़ाते हुए कहा—'प्राणप्रिये मृगनयनी ! मेरी तुम अर्द्धांगिनी हो, आत्मा हो, हृदय की धड़कन हो—तुम्हारे बिना मेरे लिए इस वैभवशाली संसार के समस्त सुख मिथ्या एवं निरर्थक लगते हैं। निःसंदेह तुम्हारा जीवन मुझसे अधिक मूल्यवान है। मेरी मनोकामना है कि इस चमत्कारी अमरफल को तुम्हीं अपने निकट सुरक्षित रखने में सक्षम हो।'

अमरफ़ल रानी को दान करने के उपरांत राजा अपने अशांत हृदय में उत्पन्न झंझावातपूर्ण ज्वार-भाटे को नींद की गोद में सुला कर चैन की साँस लेने लगे किन्तु महारानी के मन की धड़कनें अकारण ही तीव्रगति से उछलने लगीं। वह अशांत मन से उस अमरफल के चमत्कार को अपने प्रेम की गहन सीमाओं में कैद कर बौना बना देना चाहती थी। तृष्णा जब भी प्रचंड रूप लेती है कभी बुझाए नहीं बुझती। वह कोई बंधन नहीं स्वीकारती, वह पागल होती है, अंधी होती है, उसकी कोई सीमा नहीं। वह रात-भर सोई नहीं—यह उसे अपने उनींदे नेत्रों को दर्पण में देखने के उपरांत तेजी से अनुभव हुआ।

महारानी पिंगला के कक्ष में तीसरे दिन अश्वारोही सेनाधिपति रिपुदमनसिंह ने प्रवेश किया। महलों में पहरे पर नियुक्त प्रहरियों ने बड़े सम्मान से उनका अभिवादन किया। दासियाँ उनके दबदबे से भयातुर हो इधर-उधर मुस्कराने का अभिनय करतीं शयन कक्ष से बाहर निकल

आयी।

रानी ने रिपुदमनसिंह के व्याकुलता-भरे पदचापों के अशांत स्वरों को सुन पलंग से उतर अपने स्नेहसिक्त बाहुपाश में उसे कैद कर लिया और विलम्ब से पहुँचने का कारण जानना चाहा। पास रखे सोमरस के छलकते प्याले को सेनाधिपति की ओर बढ़ाते हुए उसने आग्रह किया--'बड़े बेचैन हो, मैं तो समझ रही थी कि आप आज दर्शन नहीं देंगे। प्रतीक्षा करते आधी रात गई।'

निकट ही आसन ग्रहण कर बैठते हुए रिपुदमनसिंह ने उत्तर दिया—'सचमुच मैं आज बड़ा व्यस्त हूँ। सोचा कम से कम सूचित अवश्य कर दूँ, आज मैं सोमरस पान न कर सकूँगा, मुझे तत्काल यहाँ से प्रस्थान करना है।' सोमरस के प्याले को हाथ से छूकर वापिस लौटाते हुए रानी की आँखों में झाँकते हुए वह उठ खड़ा हुआ—'आज क्षमा···कीजिएगा। खेद है मुझे।'

'उज्जयिनी के सेनाधिपति कुछ गोपनीयता बरत रहे हैं। मैं भी तो जानूँ सोमरस का अपमान कराने का साहस कौन-से शक्तिशाली नयन करना चाहते हैं?' रानी ने मुस्कराते हुए प्याला पुनः बढ़ाते हुए पीने के लिए निवेदन किया—'आज कम से कम एक प्याला तो पीओ। मैं तो··· एक रहस्यपूर्ण वस्तु भेंट करने के लिए आतुर बैठी प्रतीक्षारत रही, ऐसी व्यस्तता भी क्या?'

रिपुदमन ने प्याले को हाथ से ले अपने बेचैन होंठों के नीचे उतारते हुए रानी को वापिस लौटा कर कहा—'आज सचमुच समय नहीं है। कल अवश्य···।'

'कल···कल···कल। सुनते-सुनते कान पक गए। लो, अपनी मुट्ठी से खोल कर इसे अपने निकट सुरक्षित रखो, संसार के सारे सुख इसी में निहित हैं। इसे धारण करो और···तुम अमर हो जाओगे। सारी व्यस्तता, समस्त भय सदा-सदा के लिए तुम्हारा दास बन कर पूजा करेगा। इससे अधिक रिपुदमन, बताओ तुम्हें क्या चाहिए मेरे परमप्रिय!' अपनी हथेली खोल आगे बढ़ उसके वक्षस्थल से अमरफल सटाते हुए रानी के हृदय की धड़कनें बढ़ती गयीं और रिपुदमन ने उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

रात बीत गई। सुबह हुई, शाम हुई फिर रात गुजरी। इसी प्रकार एक माह बीत गया।

राजदरबार में अपनी प्रजा की शिकायतें सुनने के लिए महाराज ने शनिवार को सायंकाल का समय नियत कर रखा था। निश्चित समय से पूर्व नगर की एक लब्ध प्रतिष्ठ नगरवधू सुनयना की पालकी राजमहलों की ड्योढी में घुसी। अपने अनुचर भेज सुनयना ने महाराज से एकान्त में दर्शन करने की इच्छा प्रकट की जो सहज ही स्वीकृत हो गयी।

सुनयना ने अपने भीगे पलकों और दर्द-भरे स्वर में अपनी करुण गाथा प्रस्तुत करते हुए कहा— 'भगवन्, मुझ पापिन सुनयना के नाम से सारी नगरी ही नहीं देश-विदेश के लोग परिचित हैं जिसने कला के नाम पर अपनी माँ की तरह अनेकों अबोध रूप के पुजारियों की प्यास बुझाने के लिए उन्हें पथभ्रष्ट तक कर डाला। यौवन अंधा जो था। तृष्णा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गयी और प्यास···होंठों की सतह पर···तैरती-तैरती-सी रही। मेरी कोख से गत 16 वर्ष पूर्व एक किशोर जन्मा था जिसके प्रेम में अपने जीवन के भविष्य को झाँकते हुए पाप की बोझिल गठरी के समकक्ष भगवद्भजन में भी पूरी आस्था से बैठती। अचानक वह मेरा सर्वस्व एक विषधर के आक्रोश का निबाला बन गया क्योंकि उपवन में मेरी पूजा की थाली के पुष्प वह स्वयं चुनकर नित्य प्रति लाया करता था। मेरे प्यार की निशानी, मुझसे छिन गयी महाराज!' उसकी आँखों से आँसुओं की धार बहे जा रही थी। उसी करुण क्रन्दन को धैर्य से बाँध अपनी बंधी मुट्ठी आगे बढ़ाते हुए संयत स्वर में सुनयना बोली—"महाराजाधिराज! अब मेरे इस पापी जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। मेरे पास एक चमत्कारी वस्तु है भगवन्, जिसके सहयोग से व्यक्ति काल को जीत सकता है, वही कालजयी संसार का उद्धार भी कर सकता है। मेरी मनोकामना है कि आप जैसे यशस्वी प्रजापालक इस अनमोल अमरफल को मुझ पापिन की तुच्छ भेंट के रूप में स्वीकार कर समाज, देश और विश्व का कल्याण करे। मेरे निकृष्ट और पतित जीवन से आपका जीवन अधिक मूल्यवान है।"

सुनयना की हथेली पर खुला अमरफल का प्रकाश ऐसा देदीप्यमान हुआ कि महाराजाधिराज की आँखों में अंधकार छा गया। अपने कोसम्हालते

हुए उन्होंने प्रश्न किया—'सुनयना ! यह अनमोल रत्न तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ ? मैं इसके दानी का नाम जानना चाहूँगा ?' स्वर में कम्पन गूंजा था।

सुनयना ने साहस बटोर धीमे स्वर से उत्तर दिया—'महाराज, यह अनमोल रत्न मुझे आपके शासन के विश्वसनीय अश्वारोही सेनाधिपति रिपुदमनसिंह के अमर प्रेम की भेंट है।' सुनयना ने अपना मस्तक झुका लिया और संकेतानुसार महलों से बाहर निकली।

उन्होंने अनुभव किया कि मन और इन्द्रियां मनुष्य की एकमात्र शत्रु हैं। महाराजाधिराज एकान्त में सोचने लगे।

'मनुष्य का शरीर एक रथ के समान है, बुद्धि सारथी है और ये चंचल इन्द्रियां उसके घोड़े हैं। इन सबको वश में रखने और सावधान रहने वाला प्राणी कुशल रथी की तरह सुखमय यात्रा कर सकता है। जिस प्रकार लगाम विहीन घोड़े मूर्ख सवार को मार्ग में गिरा देते हैं उसी प्रकार जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में असमर्थ होगा वह अज्ञानी प्राणी बड़े-बड़े दुखों को भी सुख मान कर आजीवन दुख झेलता रहेगा।'

'इन्द्रियों को सर्वथा रोक रखना भी जैसे मृत्यु से अधिक कठिन और भयावह है। उसी प्रकार उनके बन्धनमुक्त विचरने से देवताओं तक का नाश सम्भव है।'

'पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से यदि व्यक्ति की एक इन्द्रिय दोषपूर्ण हो जाए तो उसकी बुद्धि मस्तिष्क से इस प्रकार बाहर निकल जाती है जिस प्रकार मशक के एक छोटे छेद से पानी भागता है।'

'जो भी प्राणी इन्द्रियों सहित मन को वश में किए बिना मंत्रियों को अपने अधीन कर शत्रुओं पर विजयी बनना चाहता है ऐसे अजितेन्द्रिय प्राणी को सदैव लोग नकार कर त्याग देते हैं।'

'जो व्यक्ति इन्द्रियों सहित मन को शत्रु समझ कर उसे पहले जीत लेता है और उसके उपरान्त वह मंत्रियों एवं शत्रुओं को यदि जीतने की इच्छा रखता है तो निश्चय ही वह सफलता एक दिन अवश्य प्राप्त करेगा।' अशान्त हृदय और अशान्त हुआ।

उन्होंने कुछ ही दिनों के पश्चात् यह भी अनुभव किया कि धन की

अपार महिमा है। जिसके पास धन नहीं उसका तेज क्षण में विलीन हो जाता है। जिसके पास धन है उसे ही लोग पंडित, विद्वान, शास्त्रज्ञ, वक्ता, दर्शनीय, कुलीन और गुणज्ञ समझ कर आदर करते हैं। धन की उपेक्षा करना अनुचित है।'

'उन्हें श्रेष्ठ व्यक्ति की वृत्ति एक फूल के समान दृष्टिगोचर होने लगी या तो वह सब लोगों के मस्तक पर सुशोभित होगा अन्यथा उपवन में ही सूखकर नष्ट हो जाएगा।'

महाराजाधिराज का अशान्त मन आकाश और पाताल में भी उड़ा।

मनमोहिनी महारानी की घृणित चरित्रहीनता के आघात से पीड़ित प्रजापालक ने राजपाट अपने अनुज विक्रमादित्य को सौंप कर जब संन्यास ले लिया तो अपार पीड़ा-भरे स्वर से उन्होंने कहा—'मूर्ख सहज में सन्तुष्ट किया जा सकता है, पंडित उससे भी सरलता से साधा जा सकता है किन्तु कामिनी को ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते।'

'यह सम्भव है मगरमच्छ की दाढ़ों में फँसी मणि बलपूर्वक व्यक्ति खींच कर बाहर निकाल ले और तूफानों-भरे समुद्र को तैर कर पार कर ले तथा यह भी सम्भव है कि प्राणी कोप-भरे सर्पों को भी फूलों के समान सिर पर धारण कर ले, पर किसी भी कामिनी नारी के चित्त की गहराई माप लेना कदापि सम्भव नहीं है। पिंगला को अमर फल दे मैं उसे कालजयी बनाना चाहता था मगर दुष्टों को अपने अमृतमय वचनों से सन्मार्ग पर लाने की इच्छा रखना बालू से तेल निकालने के समान ही असम्भव है। मेरे प्यार को झुठलाने का साहस किया उसने!—जल से अग्नि का, छाते से सूर्य की उष्णता का, तीक्ष्ण अंकुश से उन्मत्त हाथी का और औषधि से विष का निवारण सम्भव है—किन्तु मूर्खता का निवारण किसी से सम्भव नहीं है।' महाराजाधिराज आँखों से आँसू गिराते हुए सोचते—

'पंडितों की सभा में पहुँच कर एक समझदार को अपनी मूर्खता का आभास होता है किन्तु नीच जिस पदार्थ को ग्रहण कर लेता है उसकी निस्सारता पर कभी ध्यान नहीं देता जैसे एक कुत्ता अपने मुँह में फँसी हड्डी से प्रवाहित रक्त की ओर ध्यान न दे अपने ही खून के स्वाद में आनन्दित होता है।'

दीपक की लौ बुझा अंधकार में उन्होंने सोचा—'जिस व्यक्ति के निकट क्षमा है उसे किसी कवच की क्या आवश्यकता है क्योंकि प्रतिपक्षी से बचने के लिए क्षमा ही कवच है। यदि क्रोध पास है तो किसी शत्रु की आवश्यकता नहीं—क्रोध ही शत्रु के समान घातक है। मित्र समीप है तो औषधियों की कोई आवश्यकता नहीं—सब रोगों की एक दवा मित्र है। दुर्जनों की संगति प्रिय है तो सर्प की आवश्यकता नहीं क्योंकि दुर्जन सर्प की भाँति लाभ पहुँचाते भी हानि करने वाले होते हैं।' राजा की नींद उड़ गई। गुफाओं, कन्दराओं, तीर्थस्थानों में भ्रमण करते उन्होंने महायोगी गोरखनाथ के चरण पकड़ उनसे दीक्षा ले घनघोर तपस्या की।

ज्ञान की ज्योति शिखा दहकी तो उन्होंने बड़ी गम्भीरता और धैर्य-पूर्वक लोगों से कहा—'अपना विवेक प्राणी को कभी नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि विवेकभ्रष्ट व्यक्ति दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर ही गिरता जाता है—जैसे गंगा जी पहले स्वर्ग से शिव के मस्तक पर, वहाँ से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और पृथ्वी से पाताल तक गिरती ही चली गई।' साधना गम्भीरता का रूप लेती गई।

'जिस प्राणी के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है और न धर्म ही है—वे इस पृथ्वी पर वास्तव में बोझ बने जीवन जीते हैं और एक पशु के समान संसार में विचर रहे हैं।'

उन्होंने अपने देशवासियों के समक्ष विचार व्यक्त किए—'अधम व्यक्ति विघ्न के भय से कभी कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते, मध्यम जन यदि कार्य आरम्भ कर दें तो विघ्न होने पर बीच में छोड़ जाते हैं, किन्तु उत्तम प्राणी कभी विघ्नों और आपदाओं की चिन्ता किए बिना प्रारम्भ कार्यों को पूरा न होने तक कभी पीछे नहीं छोड़ते।'

'सेवा धर्म बहुत ही कठिन है जिसे दुर्लभ योगी ही पालन करने में सक्षम होते हैं। क्योंकि सेवक यदि मौन रहे तो गूँगा, बोलचाल में चतुर हो तो बकवादी, समीप रहे तो ढीठ, दूर रहे तो मूर्ख, सहनशील हो तो डरपोक और यदि असहनीय हो तो कुलहीन समझा जाता है।'

'इसी प्रकार लोभ सबसे बड़ा अवगुण है और कुटिलता सबसे बड़ा पाप है। मनुष्य को यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सत्य से बड़ा तप नहीं

है। मन की शुद्धि ही तीर्थ-यात्रा है, कीर्ति से बड़ा कोई आभूषण नहीं। विद्या ही धन है और अपयश व्यक्ति की अकाल मृत्यु है।'

मुस्कराते हुए एक दिन बोले—'राजनीति वेश्या के समान राजसभा में नाना प्रकार के रूप धारण करती है। कभी सभ्य, कभी असभ्य, कभी कठोर, कभी मृदुभाषिणी, कभी धन का अपव्यय करने सरीखी कभी उदार और कभी संचय करने वाली, कभी दयालु तो कभी हिंसा करने वाली। यह किसी एक के साथ कभी बँध कर नहीं रह सकती।'

जब आगन्तुक प्रेमी उनसे कुछ सुनने का आग्रह करते तो वे कहते—'अपने भाग्य एवं पुरुषार्थ के अनुकूल प्राणी धन अवश्य अर्जित करेगा चाहे वह मरुस्थल में रहे, चाहे सुमेरु पर्वत पर। इसीलिए मनुष्य को सदा धैर्य-पूर्वक कार्यरत रहना चाहिए, अपनी दीनता व्यर्थ ही किसी को प्रदर्शित करने से कभी कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है।'

अपने निकट दर्शनार्थियों को सम्बोधित कर उन्होंने कहा—'दान, भोग और नाश—धन की यही तीन गति हैं। जो न दान देता है और न अपने उपयोग में लाता है उसके धन की नाश रूपी तीसरी गति निश्चित समझ लेनी चाहिए।'

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने कई कृतियों की रचना की जिनमें शृंगार शतक, वैराग्य शतक, नीति शतक और वाक्य प्रदीप उल्लेखनीय हैं। उनके सुलझे विचारों से देश और जनता को नई दिशा मिली। वे भर्तृहरि के नाम से प्रसिद्ध हुए जिनकी शिक्षाप्रद नीतियों और मार्मिक उपदेशों से लोगों को समाज में नई स्फूर्ति प्राप्त करने का अवसर मिला और चरित्र निर्माण को एक नया सम्बल मिलने के कारण उनका मनोबल ऊँचा उठा।

उन्होंने सच्चे मित्र की कसौटी की परिभाषा देते हुए कहा—'भोग बड़ी-बड़ी लहरों के टूटने के समान चंचल है। प्राण क्षण में नष्ट होने वाले हैं, यौवन-सुख क्षणभंगुर है और प्रिय लोगों से प्रीति भी स्थिर नहीं—इसलिए अच्छा यही है कि प्राणी लोगों की भलाई में अपना समय लगाए।'

'जो अपने मित्र को पाप से बचाता है, हितकारी उपदेश देता है,

उसकी गुप्त बातों को गोपनीय रखता है, गुणों को ही प्रकट करता है, कभी भी आपत्ति के समय संग न छोड़कर समय पर सहायता करता है—वही सच्चा मित्र है।'

भर्तृहरि ने वास्तविक जीवन के रहस्यों को खोलते हुए स्पष्ट कहा—'भोग में रोग का भय है, कुल में क्षति का भय है, धन में शासन का भय है, मौन में दीनता का भय है, बल में शत्रुता का भय है, रूप में बुढ़ापे का भय है, शास्त्र में वाद-विवाद का भय है, शरीर में मृत्यु का भय है—किन्तु भगवान की भक्ति में किसी का भय नहीं है।'

'तृष्णा बड़ी प्रबल है जो शरीर से लिपटती ही जाती है, जो मोह से उत्पन्न होती है, इसका विस्तार सीमाहीन है—इसलिए मोह को वश में करना ही नीति-धर्म है।'

'जब प्रतिष्ठा भंग हुई धन का नाश हो गया। याचकगण विमुख जाने लगे, परिजन चले गये, धीरे-धीरे युवावस्था साथ छोड़ गई—बुद्धिमान को चाहिए कि वह एकान्त चिन्तन करता हुआ आत्म-चिन्तन में मन को लगा ले।'

'कमल में लालिमा, सत्पुरुषों में परोपकार और दुष्टों में निर्दयता स्वभाव से ही वर्तमान रहने के कारण दृष्टिगोचर हो जाते हैं।'

अपने प्रियजनों के समक्ष उन्होंने बलपूर्वक कहा—'शरीर पर्वत से गिरकर चकनाचूर हो जाए भला है, अपने हाथ को स्वयं सर्पराज के मुँह में डालकर डसवाना अच्छा है, अग्नि की चिता पर चढ़कर आहुति देना श्रेयष्कर है—किन्तु शील को भ्रष्ट करना किसी भी दशा में भला नहीं है।'

'जिस प्राणी में समस्त संसार को मोह लेने वाला शील विद्यमान है—उसे अग्नि शीतल जल के समान, समुद्र एक छोटी-सी नदी समान, मेरु पर्वत एक कंकड़ के समान, सिंह मृग के समान, सर्प पुष्पमाला के समान और विष अमृत के समान बन जाता है।'

'प्राणी चाहे जल में गोता लगाये, चाहे मेरु शिखर कन्दरा में छुप जाये शत्रुओं से संग्राम में विजयी हो जाये, चाहे विद्या, कला, व्यापार में निपुणता प्राप्त कर ले—होनी को कभी भी टाला नहीं जा सकता।'

भर्तृहरि ने राजनीति से लोगों को दूर रहने की सलाह देते हुए कहा—

'दुष्ट मंत्रियों की सलाह से शासक, कुसंगति से तपस्वी, दुलार से पुत्र, विद्या न पढ़ने से व्यक्ति, कुपुत्र से कुल, मदिरा पीने से लज्जा, बिना देख-भाल के खेती, परदेश रहने से स्नेह, सिर चढ़ाने पर पत्नी, अन्याय से मैत्री, अनीति से समृद्धि और असावधानी से धन का नाश हो जाता है।'

उन्होंने व्यंग की मुद्रा में लोगों से आगे कहा—'थोड़ी चर्बी चढ़ा सांसहीन हड्डी का टुकड़ा प्राप्त कर कुत्ता प्रसन्न हो जाता है। किन्तु श्रेष्ठ पुरुष अपने पौरुष एवं पुरुषार्थ से ही जीना चाहते हैं जैसे सिंह गोद में आये शिकार को छोड़कर हाथी मारकर ही सन्तुष्ट होता है।'

प्रेमी जनों को सम्बोधित कर लोगों को संदेश देते हुए उन्होंने कहा—'सज्जनों की संगति बुद्धि के अज्ञान का नाश करती है, मान-मर्यादा संचित करती है, वाणी को सत्य से सींचती है, पाप को दूर भगाती है, चित्त को प्रसन्नचित्त रखती है और चारों दिशाओं में कीर्ति अर्जित कराती है।'

अलवर के घने जंगलों में उनका प्राणांत हुआ जहाँ आज एक समाधि है।

उन्होंने बलपूर्वक कहा था—'प्राण हत्या से दूर रहना, सच बोलना, समय पर यथाशक्ति दान देना, तृष्णा के प्रचंड प्रवाह को तोड़ना, पराई स्त्रियों की चर्चा में रस न लेना और बड़ों से नम्रता का व्यवहार करना चाहिये।'

'दया न करना, पराये धन और पराई स्त्री की रक्षा करने में रस लेना, अकारण द्वेष रखना, सज्जन और निजी बन्धुजनों से ईर्ष्या करना दुर्जनों के स्वाभाविक लक्षण हैं। विद्या से भूषित दुर्जन भी त्यागने योग्य है जैसे मणियुक्त होने पर भी सर्प भयंकर होता है।'

भर्तृहरि आज सचमुच अमर हैं।

महामात्य चाणक्य
[लगभग 350 ई० पू०]

महामात्य चाणक्य जैसे प्रतिभावान अर्थशास्त्रियों के गुरु, कामकला के पंडित, भारत के प्रकाण्ड ब्रह्मचारी, राजनीतिज्ञ, महान कूटनीतिज्ञ, सर्वतोन्मुखी प्रतिभासम्पन्न महापुरुष के जन्म-मरण की निश्चित तिथियों के संदर्भ में विशेष जानकारी तो नहीं है अनुमानतः उनका जन्म सन् 350 ई० पू० में हुआ लगता है। भारतवर्ष में विदेशियों के आक्रमणों और राजा-महाराजाओं के आपसी झगड़ों के कारण देश की जनता दुखी थी। स्वार्थ के वशीभूत शासक एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए शत्रुओं से जोड़-तोड़ करने में संलग्न रहते थे। किसी को देश की चिन्ता नहीं थी।

महामुनि चाणक्य को इतिहासकारों ने कई नाम से पुकारा है—कौटिल्य, वात्स्यायन, खंडदन्त, द्रुमिल और विष्णुगुप्त आदि। कहते हैं उन्हें माँ से बड़ा प्रेम था। एक दिन माँ को उदास मुद्रा में रोता देख उन्होंने प्रश्न किया—'माँ, तेरे रोने का कारण क्या है? सच-सच बता, क्या बात है?'

माँ ने कहा—'तेरे भाग्य में राजछत्रधारण करने का योग है, यदि तू राजा बन गया तो बड़े लोगों के समान मुझे भूल जाएगा।'

'माँ, तूने यह कैसे जाना?' विस्मय से पूछा चाणक्य ने।

'तेरे सामने वाले दो दाँत स्पष्ट बतलाते हैं।' माँ ने समझाया—

'सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार तेरे जैसे दाँतों वाला शिशु राजा होता है।'

कुछ क्षण उसने सोचा। तत्काल निकट से एक पत्थर उठाकर अपने दोनों दाँत तोड़कर फेंकता हुआ विष्णुगुप्त ने हँसते हुए कहा—'माँ, लो, अब तो प्रसन्न हो जाओ। अपनी प्यारी माँ को छोड़कर राजा मैं कभी नहीं बनूँगा···। तुम्हारे पास ही रहूँगा। तुम्हारी ममता के लिए संसार के सभी सुखों को त्याग सकता हूँ।' छोटी उम्र में साहसी बालक ने अपनी दृढ़ता का परिचय दिया। एक दिन यही सच हुआ। वह राजा नहीं, राजा का आश्रयदाता अवश्य बना।

उसी निर्धन एवं साधनविहीन काले, कुरूप ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे निर्वासित राजकुमार को भारत का सम्राट बनाया, उसने बुद्धिमत्ता से मगध के नवनन्दों का सर्वनाश कर डाला, देश से सिकन्दर और सेल्यूकस जैसे जगद्विजेताओं को बाहर निकाल भगाया और सारे भारतवर्ष को एकता का पाठ पढ़ाकर राजनैतिक रूप से संगठित किया। उस चाणक्य के लिए स्वयं राजा बन बैठना बड़ा ही सरल था परन्तु उसने स्वेच्छा से मंत्री पद भी अपने शत्रुवत राक्षस को सौंप संन्यासी जीवन जीया। चाणक्य महान हैं।

जैन मतावलम्बियों के अनुसार चाणक्य गोलल-ग्राम निवासी थे और बौद्ध उन्हें तक्षशिला निवासी ब्राह्मण मानते हैं। दक्षिण वासी इन्हें दक्षिण देशीय कोंकणस्थ ब्राह्मण बतलाते हैं।

वास्तव में चाणक्य चणक ऋषि की संतान थे किन्तु अपनी कुटिल नीति के कारण उनका नाम ही कौटिल्य पड़ गया। इस प्रतिभासम्पन्न ब्राह्मण में सभी गुण विद्यमान थे। वह एक सफल शिक्षक था, दार्शनिक भी, शासक भी, कूट राजनीतिज्ञ भी, साहित्यिक भी, इतिहासवेत्ता भी और क्रांतिकारी समाज सुधारक भी—जिसका अध्ययन एवं अनुभव अत्यन्त ही गहन और विस्तृत था। उसका लोभ, लालच और आत्मश्लाघा से दूर जीने वाला सादा, सरल जीवन रहा।

उसके बचपन का नाम विष्णुगुप्त था। निर्धन बालक ने एक छात्र के रूप में तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। बहुत ही कुशाग्रबुद्धि एवं अथक परिश्रमी होने के कारण पहले वह स्नातक बना और बाद में वहीं का कुलपति भी। क्योंकि गुरु-दक्षिणा देने की स्थिति में वह नहीं था अतः

बिना वेतन लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में नियत समय तक शिक्षक के रूप में अध्यापन-कार्य चलाना उसे अनिवार्य था।

विश्वविद्यालय में उन दिनों धनिक ही धन-बल पर अपने पुत्रों को विद्योपार्जन के लिए भेजते थे। इस प्रकार उस युग में बड़े-बड़े राजकुमार और धनी विद्यार्थी ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम थे। शेष मेधावी परन्तु निर्धन विद्यार्थियों को परिश्रम के बल पर अपनी विद्या अर्जित करने का नियम था।

विष्णुगुप्त भी उस विश्वविद्यालय का ऐसा ही परिश्रमी स्नातक था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में अनेक राजकुमारों में चन्द्रगुप्त मौर्य भी उसका विश्वासपात्र प्रिय शिष्य था, जिसकी कृपा से वह पाटलिपुत्र का शासक बनने में सफल हुआ।

तक्षशिला के राजा का नाम आम्भीक था, जिसकी शत्रुता झेलम के राजा पुरु से थी। सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) महान ने काबुल की नदी की घाटी में प्रवेश कर अफगानिस्तान, सवात और चित्राल प्रदेशों पर हमला कर विजय प्राप्त कर ली थी।

राजा आम्भीक ने राजा पुरु को नीचा दिखाने के लिए अलक्षेन्द्र से मंत्रणा की। आचार्य विष्णुगुप्त को भी रहस्य कीं जानकारी मिली। तक्षशिला विश्वविद्यालय राजनीति का अखाड़ा था जहाँ तत्कालीन राजनीति पर चर्चाएँ होतीं, योजनाएँ बनतीं। आचार्य विष्णुगुप्त सतर्क थे और शिष्य रुचि लेने में गुरु से चार कदम आगे।

शीघ्र ही एक दिन ऐसा आ गया जब राजा आम्भीक के इशारे पर अलक्षेन्द्र की सेना ने तक्षशिला के मैदान को छावनी में परिवर्तित कर डाला। देशभक्त आचार्य विष्णुगुप्त की आँखों में खून उबल पड़ा। अपने विश्वसनीय विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—'प्रिय शिष्यो, आज देश पर संकट है। स्वयं हम विदेशियों के हाथ बेचने जा रहे हैं अपनी तक्षशिला को। हम उनके गुलाम हो जाएंगे यदि आज भी गहरी नींद सोते रहे। राष्ट्र को बलिदान चाहिए। हमें संघर्ष करना है मरते दम तक। जो देश का उत्थान चाहते हैं, मेरा सहयोग दें—विदेशियों के चंगुल से देश मुक्त कराना है।' सभी शिष्यों ने अपने गुरु के निर्देशानुसार संग्राम में कूद पड़ने

की शपथ ली। साहसी चन्द्रगुप्त को अलक्षेन्द्र की सेना की गतिविधियों के लिए यवनों की सेना में भरती होना पड़ा।

उन दिनों मगध का साम्राज्य ही भारत का शक्तिशाली राज्य था इसलिए अपने शिष्यों को योजनाबद्ध तरीके से नियत कर देशभक्त विष्णुगुप्त ने विश्वविद्यालय के गुरुओं का ऋण चुकाने के पश्चात् मगध राज्य की सीमा में प्रवेश कर लिया। वहाँ उसको मगध निवासियों को जाग्रत् करना था। जनसम्पर्क द्वारा उसने लोगों में प्रचारित करा दिया कि विश्व-विजेता अलक्षेन्द्र राजा पुरु को एक बार पराजित कर चुका है। उसका आक्रमण मगध पर निश्चित होगा इसलिए शत्रु का सामना करने के लिए देश के नागरिकों को तैयार रहना है।

दूसरी ओर अपने गुप्तचरों के माध्यम से अलक्षेन्द्र की सेना के युद्ध-कौशल आदि की गुप्त गतिविधियों के रहस्यों से परिचित हो वह अपने यथोचित संचालन में सुधार लाता रहा। पंजाब के अनेक गणराज्यों को उसने अलक्षेन्द्र के विरुद्ध भड़का दिया। पुरु जानता था कि शत्रु बलशाली है किन्तु एक भारतीय देशद्रोही ने अलक्षेन्द्र को यह रहस्य बता दिया था कि वितस्ता प्रदेश में प्रवेश के लिए 10-12 मील ऊपर झेलम नदी को सेना सरलता से पार कर सकती है। उसने भारतीय फूट का लाभ उठाकर रात के अंधकार में ही पुरु की सेना पर आक्रमण कर उसे बंदी बना लिया। इस युद्ध से अलक्षेन्द्र समझ गया था कि ऐसे शक्तिशाली शत्रु को अधिक समय तक अधीन नहीं रखा जा सकता।

उसने वन्दी राजा पुरु से प्रश्न किया—'तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए?' निर्भीक स्वर में पुरु ने तत्काल उत्तर दिया—'जैसा कि एक राजा को दूसरे के साथ करना चाहिए।' अलक्षेन्द्र राजा पुरु के उत्तर से इतना प्रसन्न हुआ कि उसका जीता हुआ सारा राज्य लौटाने के साथ उसे कुछ अन्य भारतीय प्रदेशों का भी शासक नियुक्त कर दिया।

अलक्षेन्द्र की सेना में रह चन्द्रगुप्त ने यवनों के तमाम रहस्य, उनके पश्चिमीय सैनिक ढंग जान की जोखिम उठाकर सीखे किन्तु वह दुर्भाग्य-वश सेनापति सेल्युकस की पुत्री हेलेना के प्रेम-जाल में फंस गया।

चन्द्रगुप्त द्वारा एक दिन एक भयंकर जंगली पशु से यवन कुमारी हेलेना

के प्राणों की रक्षा करने के परिणामस्वरूप वह अचानक प्रेम दीवानी बन गई थी। जिस यवन सेनानायक के साथ हेलेना का विवाह अपेक्षित था उसी ने यह रहस्य उजागर किया। चन्द्रगुप्त पर शत्रु-गुप्तचर होने का दोषारोपण किया गया। किन्तु वह बड़ी चतुराई से यवन शिविर छोड़ भाग कर अपने गुरु आचार्य विष्णुगुप्त के चरण पकड़ लिए। गुरु-शिष्य ने मिल-कर एक सुदृढ़-व्यापक राजनीतिक योजना बना डाली।

विष्णुगुप्त का इस समय एक ही लक्ष्य था—पहला चन्द्रगुप्त के पक्ष में जनमत खींचना और दूसरा यूनानियों को भारत भूमि से खदेड़ना। वह यह भी जानता था कि अलक्षेन्द्र मकदूनिया से चल कर लघु एशिया, मिस्र, ईरान और अफगानिस्तान जैसे राज्यों को पराजित कर भारतवर्ष में पैर जमाने के स्वप्न देख रहा है। दिग्विजय की आकांक्षा में 10-12 वर्ष खून बहाकर प्रदेश तो जीते किन्तु उन स्थानों पर कोई शासक नियुक्त नहीं किया, राजा पुरु के प्रदेश जीत कर लौटा दिए।

वह समझ चुका था कि अलक्षेन्द्र राजनीति से विजय प्राप्त तो कर लेता है, लेकिन इस देश के लोग यदि संगठित हो संघर्ष करें तो निश्चित ही उसकी सेना के थके लोग उसका साथ छोड़ कर भाग सकते हैं।

विष्णुगुप्त सफल राजनीतिज्ञ होने के साथ उच्चकोटि का मनो-वैज्ञानिक भी था। लोगों की नब्ज पकड़ने में चतुर होने के कारण वह अपने कार्यक्रमों को जन-जन में प्रसारित कर लक्ष्य को प्राप्त करने में निपुण था। भारतीय जनशक्ति की स्थापना के लिए महाशक्ति नामक यज्ञ के लिए देश में बिगुल बजाया गया। यवनों को भारत से बाहर निकालने के लिए यज्ञाहुति हेतु हजारों मन घी, लाखों मन सामग्री एकत्रित की गई। राजे-महाराजे आपसी फूट और अपनी दुर्बलताओं को जानते थे। परन्तु अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखने के नाम पर उन्होंने भी जी खोल कर दान दिया। चन्द्रगुप्त के सहपाठी राजकुमारों ने, जो पंजाब गणराज्य में बिखरे थे, तन, मन और धन से उस महाशक्ति यज्ञ की सफलता के लिए सक्रिय योगदान किया।

महाशक्ति यज्ञ से पूर्व प्रचारित करा दिया कि इस जन शक्ति यज्ञ से प्रसन्न हो अग्नि देवता स्वयं जनता को सम्बोधित करेंगे। मन्त्रों की शक्ति

से साक्षात् अग्नि देवता भावी युद्ध के परिणाम की घोषणा करेंगे ।

महाशक्ति यज्ञ की सूचना यूनानियों के गुप्तचरों तक शिविरों में फैली तो अलक्षेन्द्र ने पाखंड बताया किन्तु भेदिये यज्ञ देखने अवश्य भेजे गए। अपार जनसमूह कौतूहलपूर्ण रहस्यमयी महाशक्ति यज्ञ देखने उमड़ पड़ा। वेदमंत्रों से आकाश गूँज उठा। तभी ज्वाला के महाकुंड में लोगों ने एक दिव्य प्रतिमा खड़ी देखी—लाल-लाल चेहरा। उसके मुँह से, नासिका से, नेत्रों से, कानों से, माथे और भुजाओं से असंख्य अग्नि-शिखाएँ निकल कर आकाश की ओर लपलपाती दिख रही थीं। वह बोली—'मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारी भक्ति से सपूतो ! माँगो क्या चाहिए तुम्हें।'

तभी ब्राह्मणों ने खड़े होकर जनता को शांत रहने का संदेश देते हुए कहा—'अग्नि देवता साक्षात् आपके सामने हैं, आप स्वयं दर्शन कर इनकी वाणी सुनिए। आचार्य जी ! आप ही सब समझाएँ भगवन् को।"

विष्णुगुप्त ने आगे बढ़ प्रतिमा को प्रणाम करते हुए कहा—'भगवन् हुतभुज ! भारत की जनता विदेशी यवनों के अत्याचार आज सहने में असमर्थ हैं। हम निवेदन करते हैं कि आप हमें शक्ति दें जिससे पापी आततायियों से हम अपने देश को मुक्त करा सकें। भारत की पवित्र भूमि से उन्हें बाहर निकालने का उपाय सुझायें जिससे हम राष्ट्रीय एकता के एक सूत्र में बँध कर राष्ट्र की रक्षा कर सकें।'

अग्नि देवता बोले—'मेरे प्यारे वीरो ! यहाँ से चार कोस उत्तर-पश्चिम के मार्ग पर एक पहाड़ी के मध्य एक छोटा-सा पांडव कुआँ है। कुएँ को खोदकर उसमें सुरक्षित शस्त्र और अग्नि-चूर्ण का भंडार निकाल शत्रु से युद्ध करो। तुम्हारी विजय निश्चित है।'

दर्शक हतप्रभ थे। विदेशी गुप्तचर हैरान और भयभीत। लोगों में चर्चा आग के समान फैल गई—भारत जीतेगा, यूनानी भागेंगे। जहाँउत्साह की नई लहर विष्णुगुप्त ने नागरिकों में जगाई, वहीं दूसरी ओर अलक्षेन्द्र की यवन सेना में घबराहट और बेचैनी फैल गई। उनके हौसले टूट गए थे। तभी यूनानी सेना में यह प्रचारित किया गया कि लाखों भारतीय सैनिक मगध की सीमा पर पहुँच गए हैं। हमला किसी क्षण सम्भव है। सेना के सैनिक

रणबाँकुरे अलक्षेन्द्र ने महाशक्ति मगध को पराजय बता सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी किन्तु भयातुर सेना व्यास नदी पार करने को राजी न थी। सेना की अवज्ञा से विवश हो वह झेलम की ओर वापिस लौट पड़ा।

आचार्य की योजना फलीभूत हो गई। विष्णुगुप्त ने चन्द्रगुप्त को ललकारा—'भागते अलक्षेन्द्र की सेना पर तत्काल हमला किया जाए। एक भी यवन इस भूमि पर शेष न रहे।' शिष्य ने उस महान शत्रु का पीछा किया। और इस विजय से चन्द्रगुप्त को पंजाब के कुछ भाग का शासक बना दिया गया।

उधर झेलम नदी पार कर अलक्षेन्द्र ने पटला में पहुँच कर चैन की साँस ली और सेना को दो भागों में बाँट दिया। स्वयं वह बिलोचिस्तान और मकरान के तटवर्ती प्रदेशों से गुजरता हुआ और दूसरे बेड़े ने समुद्री मार्ग से ईरान में प्रवेश किया। वह इस पराजय से इतना कुंठित होकर टूट चुका था कि सन् 323 ई० पू० वह बैबिलोनिया पहुँच बहुत बीमार हो गया और केवल 33 वर्ष की अल्पायु में ही उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। देहान्त का समाचार जब पंजाब के राजाओं को मिला तो उन्होंने तक्षशिला और अफगानिस्तान में नियुक्त यवन सेनापतियों के विरुद्ध विद्रोह भड़का दिया। विष्णुगुप्त ने इस अवसर का लाभ उठा पंजाब और अफगानिस्तान के अनेक राजाओं से चन्द्रगुप्त को मिलवा दिया और स्वयं पाटलिपुत्र की ओर चल पड़ा।

आचार्य विष्णुगुप्त का जीवन अत्यन्त ही सादा और सरल था। मात्र शरीर ढकने के लिए अधोवस्त्र और उत्तरीय, कंधे पर यज्ञोपवीत, पैरों में खड़ाऊँ और हाथ में शास्त्र। छोटी-सी झोंपड़ी में पृथ्वी पर सोना, गौ सेवा कर दूध अथवा चावल के पानी का दैनिक आहार करना। चरणों में नतमस्तक राज्यलक्ष्मी से दूर रहकर जीवन-यापन करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना ही उस महान कूटनीतिज्ञ के संस्कार थे।

मगध सम्राट महाराजा महापद्म नन्द के दो मंत्री थे। प्रधानमंत्री का नाम शकटार था और राज्य का उपप्रधानमंत्री था राक्षस जो ब्राह्मण होने के कारण शकटार से जलता था क्योंकि वह शूद्र था। उस युग में ब्राह्मण होना भी गर्व की बात थी और चतुर राक्षस ने शकटार को एक षड्यंत्र रच कर

कुटुम्ब सहित कारावास में डलवा दिया। अब राक्षस मगध का प्रधान अमात्य बन बैठा। जेल में शकटार का पूरा परिवार प्रताड़ित कर मरवा डाला गया और बेचारा शकटार तड़प-तड़प कर बन्दी जीवन के अंतिम दिन पूरे कर रहा था।

एक दिन महाराजा नंद की मुँहलगी दासी विचक्षण रोती-बिलखती कारागार में शकटार से मिलने गई। पैरों पर गिड़गिड़ाती बोली—'भगवन्, राजा ने मुझे मृत्युदंड की आज्ञा दी है, मुझे बचाइए। आप ही कोई मार्ग सुझाइए!'

शकटार के अपराध के विषय में पूछने पर वह बोली—'महलों के वट-वृक्ष के नीचे बैठे राजा नंद अचानक हँस पड़े। और उन्हें हँसते देख मैं भी हँस पड़ी। क्रोधित मुद्रा में त्यौरियाँ बदल उन्होंने मेरे हँसने का कारण पूछा तो मैंने धृष्टता से बतलाया—महाराज! वैसे ही, जैसे आप हँसे मैं भी हँसी। उन्होंने तत्काल प्रश्न किया—शैतान, बतला मैं क्यों हँसा?—मैं हतप्रभ हो उनका मुँह ताकने लगी। तभी वे गरजे—दो दिन के भीतर यदि मेरे हँसने का कारण न बतलाया तो तुझे निश्चित मृत्युदंड मिलेगा।'

व्यथा सुनने के पश्चात् मौन शकटार ने कहा—'पगली विचक्षणा, राजा वट वृक्ष और उसके बीज के आकार का ध्यान कर हँसे थे। वट का वृक्ष कितना विशाल और उसका बीज खसखस के दाने के समान, आखिर एक दाने में इतना विशाल वृक्ष कैसे समाया है? हँसने का यही कारण है।

विचक्षणा दासी कारागार से बाहर आ सीधे राजदरबार में पहुँच राजा नंद से मिली और हँसने का प्रयोजन मुस्कराते हुए बतला दिया। राजा नंद ने प्रसन्नतापूर्वक उससे पुनः प्रश्न किया—'विचक्षणा! सच बता तूने यह कैसे जाना?' मुँहलगी दासी ने सविस्तार अपने शकटार से परामर्श का रहस्य खोल दिया। राजा नंद को अपनी अज्ञानता पर खेद हुआ कि ऐसा विद्वान् व्यक्ति को बंदी बना रखना कितनी मूर्खता है। शकटार को राजा ने कारागार से बंधनमुक्त कर उसे राज्य में उपप्रधानमंत्री का पद दे दिया। शकटार ने मौन हो पद स्वीकार कर लिया किन्तु मूर्ख राजा और कुटिल राक्षस से बदले की आग हृदय में सुलग उठी। होनी कैसे टाली जा सकती

है ? समय की प्रतीक्षा करने की विवशता भी थी।

मंत्री शकटार एक झोंपड़ी के आगे से गुजर ही रहे थे, देखा एक काला-कलूटा कुरूप व्यक्ति कुशा की जड़ें उखाड़-उखाड़ उसमें कुछ डालता जा रहा था। निकट आने पर उसका स्वर सुना—'हर कुशा को उखाड़ इन्हीं हाथों से पौधे नष्ट कर दूंगा जिन्हें इन्होंने आहत किया है। दुबारा उगने नहीं दूंगा चाहे सारा जीवन बीत जाए।'

कड़कड़ाती धूप में नंगे बदन, नंगे पाँव, पसीने से लथपथ देह, माथे पर तिलक, कंधे पर उलझता यज्ञोपवीत, सिर पर लम्बी-मोटी बँधी झूलती शिखा। क्रोधित मुद्रा में वह सूर्य से आँखें मिला रहा था।

शकटार ने हठी विद्वान् के निकट पहुँच नमस्कार किया और ब्राह्मण आशीर्वाद दे, क्षण-भर रुका। शकटार ने उससे जब कुशा खोदने का कारण पूछा तो वह बोला—'श्रीमन् ! इस कुशा ने मेरा हाथ काट कर ढेर-सा खून पी लिया है, मैं इस खेत से इसे जड़-मूल से सर्वनाश कर डालूंगा।' श्वास की तीव्रगति रोकने का यत्न कर उसने अपनी बात पूरी की।

'भगवन् ! इस खेत में हल द्वारा सारी कुशा की जड़ें सरलता से मैं निकलवा दूंगा। आप जैसे विद्वान् को इतना श्रम करने की आवश्यकता नहीं। आप सरीखे पंडित की पाटलिपुत्र का आवश्यकता है।' शकटार ने मुस्कराते हुए कहा।

'किस प्रयोजन के लिए ? मैं तो एक शिक्षक हूँ, आपका क्या हित साध सकता हूँ ?' विष्णुगुप्त ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में प्रश्न किया।

'शिक्षकों को विद्या दान करनी चाहिए। आप नगर में चलकर विद्यार्थियों को पढ़ाइए।' शकटार बोला—'आप हाँ कहिए व्यवस्था हो जाएगी।'

'आपको धर्म लाभ हो। सचमुच मुझे प्रसन्नता होगी।' शकटार को विष्णुगुप्त ने कृतज्ञता प्रकट की, उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

विष्णुगुप्त और शकटार मित्रवत हो दो शरीर एक प्राण हो गए। विचक्षणा दासी महलों के तमाम रहस्यों को निरंतर जुटा निश्चित दिशा बोध कराने में सहायक बनी। विष्णुगुप्त को महलों में प्रवेश कराने के लिए एक दिन मंत्री शकटार राजा के यहाँ श्राद्ध के अनुष्ठान में व्यासासन पर

बिठा आया। शासन तंत्र के कुछ राज कर्मचारियों ने चाणक्य के रंग-रूप को देख व्यंग्य करते हुए काना-फूसी की। कुछ उसे उच्चासन पर देख अपमानित कराने के लिए राजा के कान भरने गए। कुछ ने संदेह व्यक्त किया—'यह तो चणकपुत्र है जिसके पिता को राजद्रोह के अपराध में मगध राज्य से निष्कासित किया गया था। महापद्म नंद ने राजकुमार को वास्तविकता जानने के लिए काले ब्राह्मण के निकट भेजा। क्रोधी राजकुमार ने चाणक्य को व्यासासन से चोटी पकड़ कर बाहर खींच लिया। इस घटना से अपमानित चाणक्य ने महलों में ही अपनी शिखा खोल कर शपथ ली कि जब तक नंद वंश को समूल नष्ट नहीं कर देता अपनी यह खुली शिखा नहीं बाँधूंगा। शकटार ने जले पर नमक छिड़क चाणक्य में प्रतिहिंसा की आग को दहकाने का प्रयास किया।

उसने राजा नंद द्वारा किए जा रहे अत्याचारों का वर्णन करते हुए समझाया—'राज्य के सभी कर्मचारी भ्रष्ट, अत्याचारा, व्यभिचारी हैं। निर्धनों की हड्डियों पर गगनचुंबी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं, लोभी ब्राह्मण समाज को पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं, दुखियों का सुनने वाला कोई नहीं, खेत को बाड़ ही खा रही है, राजा का ध्यान इस ओर नहीं, वह मौज-मस्ती में मगन है। पाप का घड़ा गर्दन तक भरा है—इसको फोड़ देना ही श्रेयष्कर है।' विष्णुगुप्त बड़ी तन्मयता से शकटार की बातें सुनता रहा।

पाठशाला का शिक्षक पाटलिपुत्र का क्रान्तिकारी बन गया था। घर-घर में विद्रोह की आग भड़कायी गयी। गुप्तचरों ने अपनी गोटें जमा दीं। अन्दर से शकटार और विचक्षणा के आक्रमण, बाहर से चन्द्रगुप्त और उसके सहयोगियों के प्रखर प्रहार पर प्रहार। विष्णुगुप्त ने अपनी योजनानुसार ऐसा जाल बुन दिया जिसके बाहर नंद का परिवार निकल कर भाग ही नहीं सकता था। विष्णगुप्त के एक ही इशारे पर चोट पर चोट पड़ने लगी और अंततः राजा नंद का सर्वनाश होते ही महामात्य राक्षस ने सोचा—पाटलिपुत्र में ही वह भूमिगत हो जाए। जिस विष्णुगुप्त को एक दिन पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ा था वही कूटनीति की चक्रव्यूह रचना में राक्षस के विरोध करने पर भी सेनापति और शेष मंत्रियों को उससे तोड़ कर मगध में रक्तपात किए बिना चन्द्रगुप्त को खाली राजसिंहासन पर बिठा दिया।

मगध पर आक्रमण करते समय विष्णुगुप्त ने जहाँ पंजाब के राजाओं से प्रलोभन द्वारा ही सहयोग लिया था वहीं गांधार नरेश पर्वतेश्वर को उसके हारे आधे राज्य देने का वचन भी दिया । सभी अपनी-अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए दल-बल सहित पाटलिपुत्र में मौज-मस्ती में मगन थे । पाटलिपुत्र में षड्यंत्र का वातावरण खूब फूला-फला ।

राक्षस ने विषकन्या की सहायता से चन्द्रगुप्त को मरवाने का षड्यंत्र रचा किन्तु विष्णुगुप्त की पैनी दृष्टि ने उसी को विवश कर दिया कि वही अपने हाथों पर्वतेश्वर का अंत कर अपनी जान बचा सकती है । तदुपरांत उसे सैनिक शिविर में घुमा कर राक्षस की छल नीति का प्रदर्शन भी किया गया। राज्य सभा में माँग उठाई गयी कि पाटलिपुत्र की शांति के लिए राक्षस को समर्पित किया जाए जो विषकन्या से चन्द्रगुप्त के प्राण लेना चाहता था ।

नरेश पर्वतेश्वर का पुत्र मलयकेतु तो अपने प्राण बचा कर भागा किन्तु उसका भाई विरोचक आधा राज्य प्राप्त करने के लिए मुकुट धारण किए हाथी पर बैठा भव्य जुलूस में आगे-आगे था और पीछे चन्द्रगुप्त मौर्य की सवारी थी। महलों में प्रवेश करते समय राक्षस समर्थक दारु वर्मा ने ज्यों ही चन्द्रगुप्त के हाथी को आगे बढ़ते देखा उसने मेहराब तत्काल गिरा दी किन्तु दुर्घटना में मारा गया विरोचक जो अपना हाथी पहले प्रवेश करने की होड़ में अंदर ले घुसा । तभी किसी के तीर का निशाना दारु वर्मा भी बन चुका था । कौटिल्य की सतर्कता से चन्द्रगुप्त के प्राण बच गए ।

चींटियों की एक कतार अपने मुँह में अन्न दबाए चन्द्रगुप्त के शयन कक्ष की दीवार पर रेंगती देख गुप्तचर ने विष्णुगुप्त को सूचित किया। छान-बीन कर वह एक सुरंग के मुहाने तक पहुँच गया जिसमें छुपे लोग षड्यंत्र का संचालन कर रहे थे। विष्णुगुप्त ने सुरंग में आग लगवा दी। सभी लोग उसमें भुन कर राख हो गए । राक्षस की यह योजना भी धूल चाट गयी । चन्द्रगुप्त मौर्य अपनी सुरक्षा के प्रति काफी चौकन्ना हो गया ।

एक दिन एक गुप्तचर ने एक सड़क पर खेलते बालक के हाथ से गिरी अँगूठी विष्णुगुप्त को लाकर दी । बालक की छानबीन करते हुए रहस्य खुला कि वह घर राक्षस के अभिन्न मित्र चंदनदास जौहरी का था । कौटिल्य ने

जौहरी को तत्काल बंदी बना डाला क्योंकि उसे संदेह था कि अपने घर में राक्षस परिवार को उसी ने शरण दे छुपा रखा है।

राक्षस की हर चाल कौटिल्य के सामने मात खा जाती, वह अत्यन्त ही परेशान था। पाटलिपुत्र में चप्पे-चप्पे पर गुप्तचर फैले थे। इधर चन्द्रगुप्त के मन में भी अनेकों शंकाएँ विष्णुगुप्त के क्रूर अनुशासन से जाग्रत हो उठी थीं, उसके निर्लोभ सहयोग से भी उसकी अन्तरात्मा कुंठित थी।

मानसिक तनावग्रस्त होने पर चन्द्रगुप्त ने राजवैद्य अभयदत्त से परामर्श किया। कुछ ही देर में वैद्य ने शर्बत तैयार कर राजा के सम्मुख पेश कर दिया। शंकालु कौटिल्य की पैनी दृष्टि जब शर्बत पर पड़ी उसने वही पेय राजवैद्य को पिलाकर विषयुक्त शर्बत से उसे यमपुरी पहुँचा दिया।

चन्द्रगुप्त से कृत्रिम कलह का नाटककर प्रचारित करा डाला गया था कि विष्णुगुप्त से मंत्री पद छीना जाएगा। राजा अब राक्षस का प्रशंसक है। राक्षस को गुप्तचर भागुरायण ने बतलाया कि चन्द्रगुप्त उसे मंत्री बनाना चाहता है। राक्षस ने प्रसन्न मुद्रा में मुस्करा कर कहा—'चन्द्रगुप्त मेरी मुट्ठी में है, बाहर कब था।' यह कथन मलयकेतु ने छुप कर जब स्वयं सुना तो वह राक्षस से मन ही मन जल उठा। वह सोचने लगा कि जो आभूषण उसने राक्षस को भेंट स्वरूप भिजवाए वास्तव में मूर्खता थी।

विष्णुगुप्त ने राक्षस के दूसरे अभिन्न मित्र शकटदास कायस्थ को मृत्यु-दंड सुना दिया। अपने गुप्तचर सिद्धार्थक को एक पत्र शकटदास से लिखवाने का मंत्र समझाया। सिद्धार्थक ने जल्लादों से उसे छुड़ा कर राक्षस के सम्मुख सौंप कर मित्रवत विश्वसनीयता प्रकट की। राक्षस ने जल्लादों से टक्कर लेकर प्रिय मित्र शकटदास को छुड़ा प्राण बचाने वाले साहसी सिद्धार्थक को मलयकेतु से प्राप्त आभूषणों को उपहारस्वरूप तत्काल भेंट कर दिए। सिद्धार्थक ने राक्षस से आभूषणों को कोष में सुरक्षित रखने के लिए मुद्रा प्राप्त कर ली। यह मुद्रा राक्षस की ही थी जिसे विष्णुगुप्त ने सिद्धार्थक द्वारा राक्षस को भिजवायी थी। सभी कार्य गोपनीयता से चला, किसी को भनक भी नहीं पड़ी।

वही मुद्रा शकटदास को राक्षस ने दे दी जिससे आज्ञा-पत्र पर वह आसानी से अंकित कर सके। कौटिल्य की योजना फलीभूत हो गई। उसके

...प्तचरों ने इधर मलयकेतु को राक्षस के विरुद्ध काफी भर दिया। उसका विश्वास न चन्द्रगुप्त पर था और न राक्षस पर किन्तु मरता क्या न करता, चाह कर भी दोनों से दूर भागना सम्भव न था। उचित समय की प्रतीक्षा में मौन रहना उसकी विवशता जो थी।

सिद्धार्थक एक दिन बिना राहदारी मार्ग में पकड़े जाने के कारण कोड़े लगवाने के लिए दंडित किया गया। शरीर पर कोड़े बरसने लगे। मार खाते समय उसकी बगल में छुपी आभूषणों का डिब्बा और एक पत्र भूमि पर गिर पड़ा। पत्र और डिब्बे दोनों पर ही राक्षस की मुद्रा अंकित थी। भयंकर यातनाओं से बचने के लिए सिद्धार्थक ने उगल दिया—'यह पत्र मुझे राक्षस ने चन्द्रगुप्त मौर्य को इन आभूषणों सहित पहुंचाने के लिए दिया था। मेरा कोई अपराध नहीं, मैं तो मात्र इनका सेवक हूँ।'

मलयकेतु ने अपनी आँखों से देखा और कानों से सुना कि राक्षस चुपचाप चन्द्रगुप्त को अपना बना उसे मूर्ख समझता है--तत्काल उसने कपटी का साथ छोड़ना ही श्रेयष्कर समझा। राक्षस हताश हो उठा।

प्रिय मित्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा के लिए उसने कौटिल्य को आत्मसमर्पित कर दिया। विष्णुगुप्त ने कहा—'चन्दनदास जौहरी को यदि बचाना है तो चन्द्रगुप्त मौर्य का महामंत्री पद स्वीकार करें।' राक्षस की डबडबायी आँखें कौटिल्य के चेहरे पर थम कर बरबस बरसने लगीं। विष्णुगुप्त ने आगे बढ़ राक्षस को कंठ से लगा बाहुपाश में जकड़ अपनी महानता एवं उदारता का अभूतपूर्व परिचय दे दिया।

महामात्य चाणक्य बड़े ही प्रतिभावान, कूटनीतिज्ञ, प्रखर बुद्धिवादी, वेदधर्मावलम्बी एवं अलौकिक क्षमतासम्पन्न हठी राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने अपने जीवन काल में अनेक कृतियों की रचना की जिनमें चाणक्य नीति, अर्थशास्त्र, कामसूत्र और न्याय भाष्य आदि प्रसिद्ध ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

उन्होंने कहा—'जैसे कसौटी पर घिसने, आग पर पकाने-तपाने से सोना परखा जाता है वैसे ही त्याग, गुण, कर्मशीलता से प्राणी की तत्काल पहचान हो जाती है।'

'बड़ी आयु वाले मूर्ख पुत्र की अपेक्षा पैदा होते ही जो मर गया वह अच्छा है। क्योंकि मरा हुआ थोड़े समय कष्ट देता है किन्तु ...

भर जलाता ही रहेगा।'

'दुष्ट अथवा चुगलखोर और सांप में से सर्प की निकटता अच्छी है क्योंकि वह काल आने पर ही डसता है किन्तु चुगलखोर तो कदम-कदम पर कष्ट पहुंचाता ही रहेगा।'

'पुत्र को मात्र पांच वर्ष की आयु तक प्यार और दुलार से पालन करना चाहिए, पन्द्रह वर्ष की आयु तक दंड आदि देकर भी उसे अच्छे कार्य में जुटावें। किन्तु सोलहवां वर्ष आने पर पुत्र को मित्रवत् व्यवहार करना उचित है।'

'लड़की का संबंध अच्छे कुल में, लड़के को विद्वान् बनाना, शत्रु को आपत्ति में डालना और मित्र को अच्छे कार्यों में लगाए रहना ही चातुर्य है।'

'जब तक शरीर निरोगी एवं स्वस्थ है, और जब तक मृत्यु नहीं आती मनुष्य को अपने कल्याण के लिए विभिन्न कार्य कर लेने चाहिए क्योंकि प्राण निकलने के समय का आभास किसी को नहीं अन्यथा शेष कार्य अधूरे रह जाएंगे।

'काम के समान दूसरा कोई रोग नहीं, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान आग नहीं और ज्ञान से बढ़कर कोई अन्य सुख नहीं है। बादल समान अन्य जल नहीं, अपनी आंख के समान प्रकाश नहीं, आत्मबल के समान अन्य बल नहीं और अन्न के समान दूसरा कोई प्रिय पदार्थ संसार में नहीं है।'

'जिसने जन्म दिया, यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराए, जिसने शिक्षा दी है, जिसने भय से रक्षा की है, जिसने अन्न आदि दिया है वह पिता के समान है—उसका आदर करना ही धर्म है।'

'जिस सरोवर में जल रहता है वहां ही हंस आकर बस जाते हैं और सूखे को छोड़ देते हैं। मनुष्य को ऐसे हंस के समान नहीं होना चाहिए जो बार-बार छोड़े और बार-बार आश्रय ले।'

'बुद्धिमान मनुष्य को भोजन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए केवल एक धर्म का ही दृढ़ चिन्तन करे। यह निश्चित सत्य है कि मनुष्यों का आहार जन्म के साथ-साथ पैदा होता है।'

'दुष्ट लोग बुढ़ापा आने पर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते, जैसे

इन्द्रायण फल पकने पर भी मीठा नहीं होता।'

'शासक, अग्नि, गुरु और स्त्री इनसे सदा साधारण व्यवहार रखना चाहिए क्योंकि इनकी अत्यन्त समीपता नाश का कारण बनती है और दूर रहने पर इनसे कभी कोई फल नहीं मिल सकता।'

'इसी प्रकार ईख, तिल, नीच, सोना, भूमि, चन्दन, दही और पान का सदा मर्दन करना या कुचलना ही श्रेयष्कर नीति है।'

'मदिरा पान करने वाला क्या नहीं बक सकता? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं? और कौए क्या नहीं खा सकते?'

'विषहीन सांप को भी अपना फन फैला कर फुफकार मारनी चाहिए क्योंकि विष रहे न रहे आडम्बर से भी फन फैलाने से दूसरों को भयभीत करना आवश्यक है।'

चाणक्य अपने युग के लौह पुरुषार्थ थे उन्हें राजद्रोहियों, देशद्रोहियों के दमन करने में तनिक भी कभी दया नहीं आई किन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे फूल के समान कोमल, सरस और सहृदय भी थे। वे कहते—'वेश्या, यम-राज, शासक, आग, चोर, बालक, भिक्षुक और दुष्ट दूसरों के दुःख से कदापि दुःखी नहीं होते। इनके आगे अपना दुःख प्रकट करना व्यर्थ समझना चाहिए।'

'एक भी गुण सभी दोषों को नष्ट करने में सक्षम होता है; जैसे केतकी में कांटे भी होते हैं, सांप भी निकट रहते हैं, उस पर कभी फल नहीं लगते, देखने में टेढ़ी भी है, बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है और पैदा भी कीचड़ में होती है किन्तु उसकी मनमोहक सुगंध सभी को प्रिय है।'

'गुण वह है जिसकी प्रशंसा दूसरे लोग भी करें, चाहे वह गुणहीन ही क्यों न हो। अपने मुंह स्वयं बड़ाई करने वाला गुणवान भी गुणहीन होता है।'

'दुष्टों और कांटों से बचने के केवल दो उपाय हैं, या तो जूती से उनका मुंह तोड़ दिया जाए अथवा उनसे दूर रह बच कर चला जाए।'

'शास्त्रों का अंत नहीं, विद्याएँ अनेक प्रकार की हैं। जीवन का समय कम है, विघ्न नाना प्रकार के, अनेको हैं। इसलिए केवल सार वस्तु को ही चुन लेना चाहिए जैसे हंस जल के बीच से मोती चुग लेता है।'

'कटा हुआ चन्दन का वृक्ष अपनी सुगंध नहीं छोड़ता, बूढ़ा गजराज अपनी क्रीड़ा नहीं छोड़ता, ईख कोल्हू में पिलने के पश्चात् भी मिठास नहीं छोड़ती—उसी प्रकार दरिद्र होने पर भी कुलीन व्यक्ति गुणों और भद्रता को कहीं नहीं छोड़ता।'

चाणक्य का मस्तिष्क जितना उर्वर था उतना विशाल, उन्होंने कहा—'किसी एक के त्याग से कुल की यदि रक्षा सम्भव है तो उसे छोड़ देना ही उचित है। कुल की अपेक्षा पूरे गाँव की भलाई के लिए कुल को, देश के लिए गाँव या नगर को और आत्मरक्षा के लिए समस्त भू-मंडल को त्याग देने में भी कोई हानि नहीं है।'

'आँखों के सम्मुख मीठी-चुपड़ी वार्त्ता करने वाले, पीठ पीछे सभी कार्य नष्ट करने वाले मित्र को कंठ तक भरे दूध से अंदर से विष से भरे घड़े की तरह तत्काल छोड़ देना ही श्रेयष्कर है।'

'बुरे मित्र पर, यहाँ तक कि निकटतम अच्छे मित्र पर भी पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। सम्भव है अपना अनन्य मित्र भी नाराज हो सभी गुप्त बातों को प्रकट कर दे तो क्या अहित नहीं होगा?'

'प्रलयकाल में समुद्र भी अपनी मर्यादा नष्ट कर देते हैं किन्तु साधुजन आपत्तिकाल में कभी भी अपनी मर्यादा नष्ट नहीं होने देते।'

'जिस प्रकार एक ही सुगंधित फूल वाले वृक्ष से सारा उपवन महकने लगता है उसी प्रकार सुयोग्य पुत्र से कुल की कीर्ति देदीप्यमान होती है। किन्तु आग से जलते एक सूखे वृक्ष से सारा उपवन जल कर राख हो जाता है, इसी प्रकार कुपुत्र अपने कुल का नाश भी कर डालता है।'

'तपस्या अकेले में, पढ़ना दो के साथ, गाना तीन के साथ, यात्रा चार के साथ, खेती पाँच के साथ और युद्ध अनेक सहायकों के साथ उत्तम परिणाम देता है।'

'मूर्ख से सदा दूर ही रहने का यत्न करना चाहिए क्योंकि मूर्ख मनुष्य देहधारी होते हुए भी दो पैर वाला पशु है। वह सदा अपने वचन-रूपी बाण से पीड़ा पहुँचाता ही रहेगा। इसी प्रकार झगड़ालू स्त्री, बुरा भोजन, नीच कुल की सेवा, बिना आग शरीर को जलाते हैं।'

'सत्यं मेरी माँ है। ज्ञान मेरा पिता है। धर्म मेरा भाई है। दया मेरी

बहिन है। शांति मेरी पत्नी है। क्षमा मेरा पुत्र है। मुझ अकिंचन राजनीतिज्ञ के यही छः सबसे प्रिय बंधु-बांधव हैं।'

'धर्म ही सुखों का मूल और राजनीति की संचालक शक्ति है। मित्र धर्म से च्युत मनुष्य को मैं मरे हुए पुरुष के समान ही समझता हूँ।'

'जो लोग अपने धर्म को छोड़ दूसरे के धर्म का सहारा लेते हैं, वे स्वयं इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार कोई राजा दूसरे के धर्म का आश्रय लेते ही नष्ट हो जाता है। अपना धर्म चाहे जैसा भी हो, वही अपना रहता है—दूसरा तो सदा पराया ही रहेगा।'

'यह धर्म तभी बना रहेगा, जब देश की आर्थिक स्थिति ठीक हो। अगर देश की राजनीति को सही ढंग से चलाना है, तो देश की अर्थव्यवस्था ठीक करनी अनिवार्य है। जिस देश की अर्थव्यवस्था ठीक नहीं उसका धर्म भी सुरक्षित नहीं रह सकता।'

'प्रजा का कोप सब कोपों से भयंकर होता है क्योंकि देश की जनता ही सबसे बड़ी शक्ति होती है। इसीलिए सरकार को चाहिए कि पहले वह प्रजा को सुखी रखे। यदि कोई राजा प्रजा को दुखी करेगा, तो वह दिन दूर नहीं प्रजा उसके विरुद्ध अवश्य विद्रोह कर देगी। ऐसी हालत में सरकार को कोई भी बचा नहीं सकता।'

'राजनीति और अपने कार्यों का ज्ञान होना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है। इसी धर्म से देश में सुख और शांति सम्भव है।'

'जिस देश का प्रधानमंत्री कुटिया में रहता है, वहाँ की प्रजा भव्य भवनों में निवास करती है। जिस देश का प्रधानमंत्री महलों में रहता हो, वहाँ की प्रजा तो झोंपड़ियों में ही रहेगी।'

'झोंपड़ियों में रहने वाले प्रधानमंत्री धार्मिक मन के ही होंगे न कि शुद्ध राजनीतिक।'

'राजा धार्मिक होगा, तो प्रजा अपने-आप धर्म का पालन करेगी। राजा पापी, निर्दयी होगा, तो प्रजा भी फिर पाप के मार्ग पर चलेगी। जैसा राजा होगा, वैसी ही प्रजा होगी।'

समदर्शी अकबर महान
[1542-1605 ई०]

तैमूर वंशज सम्राट अकबर यद्यपि एक मुसलमान था किन्तु उसके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ने किसी सम्प्रदाय, जाति, धर्म की सीमाओं में बगैर बँधे मनुष्यता के कल्याण, उत्थान और विभिन्न धर्मों और समुदायों के समन्वय हेतु जीवनपर्यन्त यत्न किया और दृढ़तापूर्वक संकीर्ण मतवाद एवं कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष ही करता रहा। वंश वृक्षानुसार तैमूर भी चंगेज का सम्बन्धी था जिसका धर्म भी बौद्ध धर्म की शाखा से अंकुरित हुआ था। इस प्रकार मुगल सम्राटों में चंगेजी रक्त विद्यमान था क्योंकि बाबर की माँ मंगोल शासक यूनुस की बेटी थी।

अकबर का जन्म 1542 ई० में आक्सस पार के एक सुसंस्कृत सूफी परिवार की शिया बेटी के गर्भ से अमरकोट में एक राजपूत की छत्रछाया में हुआ था। वह बाबर का पोता और हुमायूं का पुत्र था जिसमें अपने पिता बाबर और पूर्वज तैमूर का अनुकरण करते हुए हृदय में विस्तृत एशियायी साम्राज्य पर प्रभुत्व जमाने की प्रबल महत्त्वाकांक्षा थी। और एक दिन शेरशाह सूरी से उसने अपने मन की इच्छा प्रकट की कि उसे पंजाब पर अधिकार से वंचित न किया जाए।

शेरशाह सूरी ने स्पष्ट उत्तर देते हुए उसकी माँग ठुकरा दी थी— 'बेहतर है ऐसे स्वप्न देखने की अपेक्षा वह काबुल वापिस लौट जाए और वहीं जाकर बसे।'

इससे पूर्व बाबर ने भी एक दिन इसी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत हो

राजपूतों के शक्तिशाली श्रेष्ठ शासक संग्राम सिंह के आश्वासन पर लोदी पर आक्रमण कर दिया किन्तु समय पर राजपूतों का सक्रिय सहयोग न प्राप्त होने पर उसे मुंह की खानी पड़ी थी।

हुमायूं को अवसर भी मिला किन्तु दुर्भाग्यवश समय रहते राजपूतों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध न रख पाने से उसे राजसिंहासन से हाथ धोना पड़ा। वह निरन्तर प्रयास करता रहा किन्तु विफलता ने उसका पीछा न छोड़ा और अधिकतर समय शत्रुओं से संघर्ष करने में ही व्यतीत हुआ। अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ति के लिए स्थान-स्थान पर उसे भटकना पड़ा, तभी अकबर जन्मा। पुत्र-रत्न की प्राप्ति के इस खुशी से भरे अवसर पर कोई भव्य आयोजन न कर उसने रेगिस्तानी खंड में अपने सगे-सम्बन्धियों के बीच मात्र कस्तूरी बांटते हुए कहा था—'मैं इस समय कस्तूरी से ही आपका स्वागत करने में सक्षम हूं किन्तु मुझे विश्वास है कि आपके आशीर्वाद से मेरा यह पुत्र इस कस्तूरी की महक के मानिन्द अपनी कीर्ति सौरभ को संसार में फैलाने योग्य अवश्य बनेगा, ऐसी मेरी कामना और विश्वास है।' हुमायूं सुन्नी परिवार का था अतः अकबर को बचपन से ही सुन्नी धर्म में आस्था होनी स्वाभाविक थी। सुन्नी नियमों के अनुरूप प्रार्थना, ध्यान, समाधि में उसकी रुचि इतनी बढ़ी कि कभी-कभी रात-भर 'या हू', 'या हादी' रटता हुआ प्रातःकाल की किरणें भी देखता।

उसके शिक्षकों में कुछ शिया थे और एक 'सुलह-कुल' का समर्थक। बचपन उसका पिता के एक अत्यन्त विश्वसनीय सलाहकार एवं संरक्षक बैरम खां की देख-रेख में बीतने के कारण वह युद्ध कौशल की निपुणता प्राप्त कर एक साहसी, बलिष्ठ और आत्मविश्वासी सैनिक के गुण अर्जित कर चुका था।

अपने मनोभाव किसी पर प्रकट न होने देता मगर अन्तर्दृष्टि इतनी पैनी कि सहज में यह पता कर लेता कि कब क्या करना उचित है। जिस समय जैसा व्यवहार उपयुक्त लगता वैसे ही कार्य प्रारम्भ कर देता। दूरदर्शी ऐसा कि भावी घटना क्रमों का सही-सही पूर्वानुमान लगा लेता। हुमायूं को अपने होनहार, पराक्रमी और आत्मविश्वासी पुत्र पर बड़ा गर्व था और वह इसीलिए अधिकतर उसे अपने साथ रखने का प्रयास करता।

बलशाली ऐसा कि एक दिन अहंकारी आदम खाँ जैसे योद्धा को एक ही घूंसे में धराशायी कर डाला। लगभग 9 वर्ष की उम्र में अपने पिता हुमायूं के साथ सिकन्दर सूरी से संग्राम करते समय अकबर ने अपने हाथ रणक्षेत्र में दिखाकर सम्राट को विजय श्री दिलवाई थी। और हुमायूं समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न सँजोए बैठा था तभी 26 जनवरी, सन् 1556 ई०को एक छत से नीचे फिसल कर गिर जाने से उसका देहावसान हो गया। इस प्रकार अपने 14 वर्षीय मेधावी, वीर पुत्र अकबर को दिल्ली से आगरा तक का राज्य छोड़ वह नश्वर संसार से चल बसा, स्वप्न धूलि-धूसरित हो गए।

अचानक अकबर पर कठिनाइयों का पहाड़ टूट पड़ा था मगर उसका मनोबल और पौरुष इतना ऊँचा था कि सहज ही अपने मृदु व्यवहार से अनुगतों, सहयोगियों, सेवकों और अधीनस्थों का मन मोह लिया।

धीमे-धीमे लोगों के सामीप्य से सभी का विश्वास अर्जित किया और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए सभी वर्गों में एकता, प्रेम, सद्भाव और सहिष्णुता के अंकुर उगाए जिससे अपनी बिखरी हुई सैन्यशक्ति को संगठित किया जा सके।

इसी प्रयास के बल पर वह हिन्दू-मुसलमानों के बीच सुलगते वैमनस्य और अविश्वास की आग को बुद्धिबल से बुझा सकता था। शासन-सम्बन्धी अनुभव न होने के कारण सभी लोगों की सद्भावना और सहयोग से ही शासन सूत्र सँभालने में सफलता की किरण दृष्टिगोचर हो रही थी।

24 फरवरी, 1556 को शासन की बागडोर सँभाल वह गद्दी पर आसीन हो गया और आगरा को अपनी राजधानी बनाया जिससे शासन की नीतियाँ और राज्य की समुचित व्यवस्था पर नियंत्रण रखा जा सके। उस समय देश अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त था इसलिए अपने राज्य के विस्तार के लिए आसपास के दुर्बल शासकों को पराजित करना आवश्यक था।

बैरम खाँ की सूझ-बूझ और वीरता का उपयोग उसने सर्वप्रथम पड़ोसी शासक हेमू के विरुद्ध किया। मुगलसेना ने हेमू की सेना पर चढ़ाई कर

पानीपत की लड़ाई में उसे परास्त कर डाला और अकबर ने अपनी पहली विजय पताका फहरायी। वह उत्साहित हुआ।

किन्तु बदायूँनी जैसे कट्टर मुसलमान के विचारों से वह एक हद तक सहमत हो गया था कि 300 वर्ष या 800 वर्ष के संघर्ष के बाद भी हिन्दू धर्म ही भारत का प्रधान धर्म है और हिन्दुओं के नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और भौतिक ज्ञान के ग्रंथ दूसरों से श्रेष्ठ हैं।

अकबर में तीक्ष्ण बुद्धि और गहन चिन्तन शक्ति थी जिसके कारण सत्यता को परख अपनी भूल को सुधारने में वह कोई कसर उठा नहीं रखता था। उसे विश्वास हो गया था कि घृणा और वैमन्यस्य की नींव पर किसी का भारत में अपने पैर जमा पाना नितान्त असम्भव है।

मुसलमान होने के नाते अकबर एकेश्वरवादी अवश्य था मगर विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों और मत-मतान्तरों में परम सत्ता प्राप्त परमात्मा की स्थिति के विशेष ज्ञान के लिए सदा उत्कंठित रहता। इस्लाम से प्यास न बुझ पाने पर उसी सत्य की खोज में वह अन्यान्य धर्मों की ओर उन्मुख होता चला गया। उसमें एक असाधारण प्रबल गुण विद्यमान था—ज्ञान के प्रति जिज्ञासा क्योंकि वह संसार को एक पहेली मान आध्यात्मिक रहस्यों की कुंजी खोजना चाहता था।

उसने अपने पिता के विश्वासपात्र संरक्षक बैरम खाँ को अपना वकील (पूर्णशक्तिसम्पन्न राजा का प्रतिनिधि) नियुक्त कर लिया था जिसके पास सम्राट की ओर से राजा की मुहर होती और उसे सभी नियुक्तियों और आदेशों पर भी हस्ताक्षर करने का अधिकार प्राप्त हो गया। चार साल की अवधि में बैरम खाँ ने स्वामी भक्ति से बड़ी लगन, परिश्रम और ईमानदारी का परिचय देते हुए अकबर का साथ दिया। सैन्य संगठन को अकबर के इच्छानुकूल शक्तिशाली बनाने का श्रेय भी उसकी कुशाग्रबुद्धि को जाता है किन्तु उसमें अब अहंकार के बीज प्रस्फुटित होने लगे।

अकबर ने योजनानुसार 1561 ई० में बैरम खाँ के नेतृत्व में अपनी सेना की क्षमता और शक्ति परीक्षण के लिए मालवा के शासक बाज बहादुर पर चढ़ाई करने के आदेश दे दिए जो संगीत और अपनी प्रेयसी रूपमती के प्रेम में राजा के कर्त्तव्य भूल चुका था। संगीत प्रेमी बाज बहादुर को मुगल

सम्राट की विशाल सेना द्वारा मालवा पर आक्रमण की सूचना मिली तो वह भयभीत हो रणक्षेत्र से भागकर अपने प्राणों की रक्षा की। इस युद्ध में बैरम खाँ ने सैनिकों की सहायता से मालवा को पूरी तरह से लूटा, जनता पर अत्याचार किए, स्त्रियों के साथ बलात्कार की प्रेरणा दी और अनेकों पूजास्थलों को नष्ट-भ्रष्ट किया। अकबर को जब यह सूचना मिली तो उसे अपार दुख हुआ। इससे पूर्व भी बैरम खाँ की कई बार उसे शिकायतें मिल चुकी थीं कि वह अपने पद का दुरुपयोग कर एक निरंकुश शासक की तरह सम्राट से बगैर पूछे मनमानी करता है और उसे भी धोखा दे आँखों में धूल झोंकता रहा है।

अकबर ने बैरम खाँ के स्वाभिमान और स्वामीभक्ति का ध्यान रखते हुए दंडित न कर उसे तीर्थ-यात्रा पर जाने की सलाह दे दी। बैरम खाँ तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़ा किन्तु वह गुजरात की सीमा में ही प्रवेश कर पाया था कि किसी क्रोधी अफगान ने उसे अकारण ही मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार अकबर को उस निरंकुश बैरम खाँ से सहज ही में मुक्ति मिल गई और उसने तत्काल वकील का पद भी समाप्त कर दिया जिससे भविष्य में इस पद पर आसीन व्यक्ति साम्राज्य की शान्ति को कभी खतरे में डालने का पुन: साहस न कर सके।

मालवा विजय के बाद उसने अपनी सेना को पुन: एक वर्ष तक सुसंगठित कर अस्त्र-शस्त्रों से लैस किया। शक्ति-परीक्षण के लिए अकबर ने अपनी विशाल सेना द्वारा अजमेर पर चढ़ाई कर दी। अजमेर नरेश तो पहले ही अपने निकटवर्ती राजाओं से आतंकित रहता था। मुगल सेना से मुकाबला न कर शासक द्वारा अकबर की पराधीनता स्वीकार कर लेने पर सहज ही में अजमेर पर अकबर का अधिकार हो गया, इसमें किसी प्रकार का वहाँ रक्तपात नहीं हुआ।

अकबर ने बैरम खाँ के स्थान पर अबुल फजल को अपने सलाहकार के रूप में नियुक्त कर लिया जो सम्राट की नीतियों को अपनी विद्वत्ता और राजभक्ति के बल पर अपने अधिकारों सहित प्रभावित करने लगा।

उसी समय अर्थ मन्त्री के रूप में टोडरमल के कार्य से भी वह सन्तुष्ट रहता क्योंकि वह अत्यन्त कठोर शासक होने के नाते दोषी व्यक्तियों को

निश्चित ही दंड दिए बगैर न छोड़ता।

सुलह-कुल की नीतियों का अवलम्बन ले अकबर ने सभी धर्मों की रक्षा और सहयोग का बीड़ा उठाने का निश्चय किया जिससे राज्य अन्याय और पक्षपात के दोष से मुक्त हो, जनता का सहज में विश्वास अर्जित कर सके।

उसने देश के सर्वतोमुखी विकास और उन्नति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। अपनी इच्छानुकूल कार्य स्थिर करने के लिए पदों पर नये पदाधिकारियों को नियुक्त किया। दारोगा-ए-तोपखाना के पद को महत्त्व-पूर्ण बनाने के लिस प्रभावशाली और शक्तिशाली बन्दूकचियों और तोप-चियों को चुन उन पर नियंत्रण के लिए तुर्क अथवा ईरानी योद्धा को नियुक्त किया जो श्रेष्ठ समझे जाते थे। गुप्तचरी और समाचार संचार को नियन्त्रित करने के लिए दारोगा-ए-चौकी की नियुक्ति की।

इसी प्रकार वजीर के सहायक दीवान-ए-खालसा, भूमि और प्रबन्ध के लिए दीवानेतन, जागीर और वेतन-सम्बन्धी कार्य के लिए मुस्तैफी, आय-व्यय का प्रबन्ध और निरीक्षण के लिए वाकिय-नवीस, राजकीय कागज-पत्रों एवं फरमानों, घटनाओं को सूचीबद्ध रूप देने के लिए, कार्यालयों की देखरेख, हिसाबों की जाँच करने के लिए मुशरिफ नियुक्त किए गए।

अकबर ने किसानों के लिए भूमि के नियमों का सरलीकरण उनके खेतों के क्षेत्रफल को आधार बनाकर किया जिससे किसान भागने न पाएं, कष्ट देकर उनसे अतिरिक्त लगान न वसूला जाए और 10 मार्च, 1584 ई० से तो उसने इलाही सम्वत् चला दिया किन्तु हिजरी सम्वत् पूर्णतया बंद नहीं किया।

अपने निकटवर्ती राज्यों को पराजित करने के उपरान्त उसका ध्यान महाराणा प्रताप जैसे पराक्रमी और शक्तिशाली राजा की ओर गया जिसे अकबर के शक्तिशाली प्रतिपक्षियों—ग्वालियर, जोधपुर, सिरोही आदि के राजाओं—का सहयोग प्राप्त था।

सर्वप्रथम उसने प्रयास किया कि महाराणा प्रताप को बिना युद्ध लड़, रक्तपात के बिना अपनी ओर आकृष्ट कर ले किन्तु इसमें विफल हो जाने

पर उसने उसे पराजित करने का ही दृढ़ संकल्प मन में बना लिया। राजा मानसिंह के नेतृत्व में अकबर ने अपनी मुगल सेना को राजपूतों से युद्ध करने को भिजवाया।

हल्दी घाटी के मैदान में राजपूती सेनाएँ मुगल सेना के सामने रणक्षेत्र में उतरीं। मुगलों की विशाल सेना के सामने राजपूतों की सैनिक संख्या बहुत ही कम थी मगर युद्ध कला में प्रवीण रण बाँकुरे राजपूत सैनिकों ने मानसिंह के दाँत रणक्षेत्र में खट्टे कर दिए। इस युद्ध में मुगल सेना की शिकस्त निश्चित थी किन्तु दुर्भाग्यवश राणा के खेमों मे खाद्य सामग्री और सैन्य शक्ति के अभाव के कारण रणक्षेत्र से उन्हें पीछे हटने पर विवश होना पड़ा। अंत में विजय अकबर की हुई किन्तु उसने महाराणा प्रताप की वीरता का लोहा मान लिया और चेष्टारत रहा कि किसी प्रकार राणा उसका आधिपत्य स्वीकार कर सुलह कर ले। उसकी हार्दिक अभिलाषा विजय लालसा ही नहीं सन्धि के द्वारा वह एकता का पक्षपाती भी था।

यदि कोई स्वेच्छा से उसके एकछत्र राज्य में आना स्वीकार करता तो उसे वह सभी प्रकार का सहयोग और सहायता पहुँचाने का यत्न करता।

अकबर को यह भी स्पष्ट रूप से ज्ञात हो चुका था कि विधर्मी विदेशी आक्रमणकारियों, हत्यारे अमीरों और पिछले सुलतानों द्वारा निरन्तर हिन्दुओं पर किए गए अत्याचारों के फलस्वरूप भी मुसलमानों से राजभक्ति की आशा करना सम्भव नहीं। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि हिन्दुओं को शत्रु बनाकर न उस कौम को नेस्तनाबूद किया जा सकता है और न उनके सहयोग बिना वह अपने सुदृढ़ साम्राज्य की नींव ही डाल सकता है।

उसने हिन्दू-मुसलमानों के उत्सवों को समान आदर और पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर भारतीय संस्कृति के साथ इस्लामी संस्कृति का समन्वय करने का प्रयास किया जिससे मेल-जोल बढ़े, पारस्परिक एकता कायम हो, घृणा-भरा वातावरण दूर हो। हिन्दुओं के ग्रंथों की विशेष जानकारी के लिए फारसी अनुवाद कराए। हिन्दुओं के साथ विवाह-सम्बन्ध बनाने के यत्न किए।

अभी उसका स्वप्न भारत पर एकछत्र राज्य करने का अधूरा था। 1564 ई० में अकबर ने गोंडवाना के शासक पर चढ़ाई की और बड़ी

आसानी से विजय प्राप्त कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। इसी उत्साह के वशीभूत हो 1568 में चित्तौड़ के शक्तिसम्पन्न शासक उदय सिंह पर उसकी क्रूर दृष्टि पड़ी और उसे परास्त कर चित्तौड़ पर अपनी विजय पताका फहरा डाली।

अकबर ने भौगोलिक सीमाओं तथा शासन की सुविधा के अनुरूप अपने समस्त साम्राज्य को 12 भागों में विभक्त कर प्रधान नगरों व इलाकों के प्रचलित नामों के अनुसार उनका नामकरण किया—काबुल, लाहौर, मुलतान, दिल्ली, आगरा, अजमेर, इलाहाबाद, अवध, बिहार, बंगाल, मालवा तथा गुजरात (या अहमदाबाद) और उन्हें सूबा घोषित किया।

जब साम्राज्य का विस्तार हुआ तो अकबर द्वारा काश्मीर और कन्धार-काबुल में; उड़ीसा बंगाल में तथा सिन्ध के ठड्ढा को मुलतान में मिलाने पर 12 प्रान्तों की संख्या बढ़कर 15 हो गई। अब अकबर ने खान देश, बरार और अहमद नगर के तीन प्रान्त और जीत लिए।

अकबर ने अल्लाह के अक्षरों की संख्या के योग 66 के आधार पर अपनी सेना के पदाधिकारियों को 66 वर्गों में विभक्त किया था। सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि से दुर्गों का आश्रय सेना के लिए उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण समझ कर उसने विशाल सेना के पड़ाव प्रमुख दुर्ग रोहतास, चुनार, इलाहाबाद, कालिंजर, रणथम्भौर, अजमेर, आगरा, ग्वालियर, दिल्ली, लाहौर, कंधार, काबुल, दौलताबाद, औरंगाबाद, बीजापुर और हैदराबाद में रखें जिनमें रसद और अन्य सैनिक साज-सामान गुप्तरूप से सुरक्षित रखे जाते ताकि वे समय पर काम में लिए जा सकें। देशी सेनापतियों को श्रेष्ठ, उपयोगी एवं विश्वासपात्र और लड़ाकू मानते हुए भी अपनी सेना में उज्बेकी, ईरानी, मिस्री और अफगान सैनिकों को उच्च पदों पर आसीन किया। भगवान दास; मानसिंह और टोडरमल जैसे वीर एवं पराक्रमी महापुरुषों ने अपनी दृढ़ता, धीरता और तत्परता से चाहे सम्राट को कितना ही प्रभावित किया किन्तु आजीवन प्रधान सेनापति के पद को प्राप्त करने में वे अक्षम रहे।

मुगल सेना जितनी शक्तिशाली थी उतना ही दुर्बल वेड़ा उसकी नौसेना का था—बंगाल, बिहार और पंजाब में कुछ नावें थीं जो नदियाँ पार करने और मात्र जल डाकुओं का दमन करने के उपयोग में लाई जातीं।

अलबत्ता बंगाल में बड़े-बड़े बजरों पर तोपें अवश्य लगा रखी थीं।

अकबर ने इस्लाम के मतभेदों से उत्पन्न विवादों पर निर्णय देने के लिए 1579 में 'महज़र' नामक घोषणापत्र शेख मुबारक से लिखवाया और उस पर अब्दुन्नबी, काजी जलालुद्दीन मुल्तानी, मखदूमुलमुल्क, गाजी खाँ बदख्शी आदि विद्वानों ने अपने हस्ताक्षर किए थे। महज़र में निम्नलिखित बातें लिखी थीं—

'हम प्रधान उलेमा जो न केवल कानून के सिद्धान्तों और कानून के विभिन्न विभागों का ज्ञान रखते हैं और साक्ष्यों तथा तर्क पर आधारित आज्ञाओं से सुपरिचित हैं, वरन जो अपने धर्माचरण और सदाशयता के लिए विख्यात हैं···।'

'अपने व्यक्तित्व को इस भाँति प्रामाणिकता प्रदान करके वे उसके पक्ष में शास्त्र से प्रमाण देते हैं और कहते हैं—

हमने अधोलिखित के गहन अर्थ पर विचार किया है।

(1) 'अल्लाह का हुक्म मानो, रसूल का हुक्म मानो और उनका भी जो तुम्हारे ऊपर अधिकारी हों और इस हदीस का भी (2) क़यामत के दिन अल्लाह को सर्वाधिक प्रिय वह होगा जो इमाम आदिल है। जो अमीर का आदेश मानता है, वह मेरा ही आदेश मानता है और जो उसके विरुद्ध विद्रोह करता है, वह मेरे ही विरुद्ध विद्रोह करता है और (3) अनेक उन प्रमाणों के आधार पर जो युक्ति तथा शास्त्र पर आधारित हैं, हम इस निष्कर्ष में एक मत हैं कि अल्लाह की दृष्टि में मुस्तहिद की अपेक्षा इमाम आदिल (न्यायी शासक) का स्थान उच्चतर है।'

इसके बाद महज़र का अंश आता है जिसमें अकबर को श्रेष्ठता इस प्रकार प्रदान की गई—अंश इस प्रकार हैं—

'तदन्तर हम घोषणा करते हैं कि इस्लाम का सम्राट, 'मुसलमानों का अमीर, पृथ्वी पर अल्लाह का साया अबुल-फ़तह जलालुद्दीन, मुहम्मद अकबर पादशाह ग़ाजी···एकसर्वापेक्षा अधिक न्यायी, बुद्धिमान तथा भगवान का भय करने वाला शासक है। अस्तु यदि भविष्य में कोई धार्मिक प्रश्न आए जिसमें मुज्तहिदों का विचार-वैषम्य हो, सम्राट अपने तीक्ष्ण बोध एवं अपने स्पष्ट ज्ञान के आधार पर राष्ट्र के हित और राजनीतिक

सुविधा के लिए उन विभिन्न मतों में से एक को स्वीकार करने की इच्छा करें और तदवत् कोई आदेश निकालें तो हम सब इस वक्तव्य द्वारा स्वीकार करते हैं कि वह आदेश हम सबको तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को मान्य होगा।'

'हम यह भी घोषणा करते हैं कि यदि सम्राट कोई नया आदेश निकालना उचित समझें जो न केवल किसी कुरान की आयवत के अनुकूल हो वरन राष्ट्र के लिए हितकर भी हो तो वह भी हमें तथा राष्ट्र को मान्य होगी।'

इस प्रकार महजर के माध्यम से अकबर ने राज्य की व्यवस्था सँभालने के लिए सर्वमान्य आदेश निकालने का अधिकार प्राप्त कर लिया किन्तु उसे कुरान के विरुद्ध और जनहित के विरुद्ध आदेश निकालने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ।

इसके अनुसार उसे हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई और अन्य धर्मावलम्बियों के साथ समानता का व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त हो गया और सन् 1581 ई० में लोगों में सदाचरण, संयम, सहिष्णुता के आदर्श प्रतिपादित करने के लिए 'दीने इलाही' धर्म की उसने स्थापना कर डाली जिसमें अन्य धर्मों की अच्छी बातों का समावेश किया गया।

1. दीने इलाही की दीक्षा रविवार को सम्राट अकबर के समक्ष उसे गुरु मान अपनी पगड़ी हाथ में उतार उसके चरणों में सिर झुकाकर ली जाती थी जिसका उद्देश्य होता कि दीक्षार्थी ने अहंकार और स्वार्थ का त्याग कर भगवद्भजन की ओर मुँह मोड़ सम्राट से उसकी विधि जाननी है।

2. सम्राट उसे उठाकर पगड़ी उसके सिर पर रख देता अर्थात् उसने दीने इलाही में दीक्षार्थी को स्वीकृत कर लिया। उसे एक शस्त भी दी जाती जिसमें अल्लाह का एक नाम तथा 'अल्लाहो अकबर' खुदा रहता था।

3. शिष्य से आशा की जाती कि वह सम्राट के अनुकरण द्वारा अपना सुधार करेगा और सम्राट से मौखिक शिक्षा भी ग्रहण करेगा।

4. प्रत्येक शिष्य 'अल्लाहो अकबर' कहते हुए मिलने पर एक-दूसरे का अभिवादन करेंगे और दूसरा 'जल्ला जलाल हू' कहकर उत्तर दें। अर्थात् वे सदा ईश्वर का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करते रहेंगे।

5. मृत्यु के बाद देने वाले श्राद्ध भोज जीवन काल में ही देना

चाहिए।

6. जन्मदिन के अवसर पर एक प्रीतिभोज का आयोजन करें और इच्छानुसार दान दें जिससे परलोक सुधरे।

7. संघ के सदस्य जिस मास में जन्मे उस मास वे न दूसरों को मांस खिला सकते हैं और न मांस के निकट जा सकते हैं। संघ के सदस्य स्वयं मांसाहारी न होंगे पर दूसरों को बिना स्वयं स्पर्श किए मांस खिला सकते हैं।

8. संतानोत्पत्ति के लिए ही केवल सहवास करें।

9. बुराई करने वालों को क्षमादान दें और क्रोध का उत्तर कोमलता से दें।

10. सांसारिक इच्छाओं का परित्याग करें।

11. कर्म के प्रभाव पर विचार कर भक्ति तथा ज्ञान की वृद्धि करें।

12. शरीर को स्वच्छ तथा निरोगी रखें।

13. सबसे मृदु वचन बोलें और अच्छा व्यवहार करें।

14. आत्मा को भगवत्-प्रेम और भगवत्-प्राप्ति के उद्योग में लगावें। सहस्रों शिष्यों ने दीने इलाही में दीक्षा प्राप्त की किन्तु कट्टर मुसलमानों और कठमुल्लाओं में असंतोष की ज्वाला भड़की क्योंकि अन्य धर्मों पर अत्याचार न करना उनकी दृष्टि में इस्लाम धर्म की अवज्ञा थी। काजी-उलेमा विरोधी हुए क्योंकि उनके जीवन की जाँच करा अनुपयुक्त लोगों को पदच्युत कर दान से उन्हें वंचित कर दिया गया। मांसाहारियों और नशेड़ियों ने इसे धार्मिक अत्याचार कहा और इसकी आलोचना की।

इस्लामी धर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् 1565 में उसने शेख अब्दुन्नबी और मखदूमुलमुल्क अब्दुल्ला सुलतानपुरी की विधिवत शिष्यता प्राप्त की और सुन्नी सिद्धान्तों के अनुरूप ही 1575 तक शासन चलाया।

सूर्योदय से पूर्व प्रतिदिन उठकर पूर्व दिशा की ओर मुँह कर जप और ध्यान वह करता। साथ ही एक विशिष्ट स्थान पर प्रतिदिन प्रातःकाल जनता को झरोखा-दर्शन (दर्शनिया) देने का चलन शुरू किया क्योंकि अनेक लोगों में सम्राट को भगवान का अंश मानने की प्रथा थी। हिन्दुओं की परिपाटी का निर्वाह करते हुए रत्नों और स्वर्ण का तुलादान भी वह

करने लगा। मुल्लाओं को यह अजीब लगा।

दीवान-ए-आम में ही वह विशेष पदाधिकारियों और विदेशी अतिथियों से मुलाकात करता। दीवाल-ए-खास में बैठकर वह सर्वोच्च पदाधिकारियों से परामर्श करता, विशेष कृपा-पात्र लोगों से भेंट करता और वहीं गुप्त मन्त्रणाओं और महत्त्वपूर्ण नीतियों पर विचार-विमर्श किया जाता।

सम्राट अकबर ने अपने विरुद्ध भी मुकदमे लाने की जनता को अनुमति प्रदान की थी मगर किसी न्यायाधीश को बगैर पूछे मृत्युदंड देने का अधिकार नहीं था जिससे न्याय का अनुचित दुरुपयोग थमे।

अकबर ने कई बार ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में भेंट यात्राएँ कीं और श्रद्धापूर्वक दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया के मजार पर जियारत भी की। उसका अब दृढ़ निश्चय हो गया था कि सभी धर्मों में एक ही परमात्मा का सत्यांश विद्यमान है किन्तु कोई भी धर्म सभी के लिए सत्य या मिथ्या करार देना अनुचित है। अतः सभी को अपने-अपने मतों के अनुरूप जिन्हें जो भी अंश श्रेयष्कर रुचे उन्हीं को प्रतिपादित करने का अधिकार मिलना आवश्यक है।

उसके मन में नाना प्रकार के विचार आते। सन् 1557 में इसी प्रकार के असंतुलन ने जब हृदय में हलचल मचाई थी तो ऐसा वैराग्य गहराया कि घर से भाग गया और वेश बदल कर अवसर मिलते ही संतों, फकीरों, योगियों, संन्यासियों के सम्पर्क में बैठकर समय बिताया किन्तु सत्य का वास्तविक ज्ञान अर्जित नहीं कर सका। अपने धर्मगुरुओं की शरण में जब पहुँचा तो उसे अन्यत्र भी प्रकाश की किरणें खोजने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

सन् 1575 में अकबर ने लगभग 500 व्यक्तियों के बैठने योग्य एक इबादतखाने का निर्माण फतेहपुर सीकरी में करवा डाला। प्रत्येक गुरुवार को सन्ध्या समय मात्र सुन्नी विद्वानों को एकत्रित कर सभा में धार्मिक प्रश्न पर इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों के संदर्भ पर चर्चा होने लगी तो बहस में इतनी उत्तेजना बढ़ती गई कि परस्पर लोग एक-दूसरे को काफिर कहने लगे, इबादतखाना मछुआ बाजार-सा लगता।

तब अकबर को सूझा कि इस्लाम धर्म के अन्य सम्प्रदायवालों को भी

निमंत्रित करने पर बहस में सम्भव है सुन्नी एकमत होकर उनका विरोध करें। किन्तु परिणाम यह निकला कि उस सत्संग से उसके ज्ञान प्राप्त करने की आशा बिल्कुल क्षीण होने लगी जब उसे मंच पर विद्वानों की संकीर्णता, अभद्रता और अहंकार का नंगा नाच धार्मिक चर्चा के दौरान देखने को मिला। शास्त्रार्थ निम्न से निम्न श्रेणी का होता चला गया।

सभी विद्वान अपने धर्मों के संदर्भ में बलपूर्वक कहते—'मेरा धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है जिसके प्रमाण केवल मेरे धर्मग्रंथ हैं।' बुद्धि को प्रमाण मानकर कोई भी जिज्ञासु सत्यता की खोज में जागरूक न दिखने पर उसे अनुभव हुआ कि न तो इस्लाम सत्य धर्म है और न मुस्लिम विद्वानों से यह ज्ञात ही होना सम्भव है कि इस्लाम सचमुच है क्या ? इस्लाम पर एक प्रश्नचिह्न उसने लगाया।

तब सम्राट ने अपने उस इबादतखाने के द्वार विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए भी खोल दिए। हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई आदि विद्वानों को निमंत्रित कर अन्य धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन और विचारों की जानकारी के प्रयत्न में वह जुटा रहा। इस प्रकार अकबर अन्यान्य धर्मों के प्रति उन्मुख होता चला गया। कट्टर मुसलमानों ने जमकर अकबर का विरोध किया जबकि हिन्दू, जैन, पारसी और ईसाई प्रशंसक और उसके समर्थक बनते चले गए।

इस इबादतखाने में अकबर ने ब्राह्मणों को भी बुलाया। इनमें पुरुषोत्तम और देवी पंडित से वह सर्वाधिक प्रभावित हुआ जिसके फलस्वरूप अकबर ने हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कारों का आदर करना सीखा। हिन्दुओं द्वारा मान्यता प्राप्त आत्मा के आवागमन अथवा पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास को स्वीकार किया, मंत्र शक्ति और योग शक्ति के रहस्यों का ज्ञान योगियों और साधु-संन्यासियों से प्राप्त किया, ईश्वर में अगाध श्रद्धा-भाव रखते हुए फकीरों, संतों और मजारों का आदर किया, बीरबल के प्रभाव से सूर्य की पूजा में आस्था रख पूजा और ध्यान पश्चिम की ओर नहीं पूर्व की ओर मुँह करके बैठना सीखा। हिन्दू रानियों द्वारा समर्थित हवन के प्रति श्रद्धा जागी, गऊ, तिलक एवं यज्ञोपवीत का महत्त्व भी उसने समझ लिया।

शेर ताजुद्दीन देहलवी ने अकबर को समझाया कि 'इन्सान-ए-कामि
सम्राट को समझना चाहिए और उसके सामने सिज़दा करना वाजिब है
सम्राट के लिए कट्टरता से नमाज के लिए पाबन्द रहना आवश्यक न
रहा। शेख याकूब काश्मीरी ने सम्राट को समझाया कि शैतान को
ईश्वर का रूप मानना चाहिए क्योंकि व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति
उसका भी महत्त्व है। सम्राट ने नवसारी के पारसी विद्वान दस्तूर मेहर
राना से सदा अग्नि प्रज्वलित रखने का रहस्य अर्जित कर उसने दरबार
सदा अग्नि जलाए रखने का आदेश भी दिया। जैनियों की शिक्षाओं
प्रभावित हो जीव-हत्या कम करने का निश्चय लिया और ईसाइयों
नैतिकवाद और विनम्रता को उसने धर्म का अंग स्वीकार किया था।

मैक्समूलर के शब्दों में—'अकबर तुलनात्मक धर्म-तत्त्व का सर्वप्रथ
विद्यार्थी और सच्चा सत्यान्वेषी था।'

इस प्रकार हिन्दुओं के लिए ऊँचे पदों के द्वार खोल दिए गए। अकब
ने अन्य धर्मावलम्बियों को अपने नए पूजा गृहों के बनाने की अनुमति दी, पश
पक्षियों का वध करना निषेध घोषित किया, जैन साधुओं के सम्पर्क
मांसाहार त्याग, वर्ष के प्राय: आधे दिन किसी न किसी बहाने बूचड़खानों
जीव हत्या बंद करवायी।

गौ-हत्या पर रोक लगाकर हकीमों के प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करा प्रचारि
कराया कि गौ-मांस भक्षण से अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। नियम
विरुद्ध जीव-हत्या का आचरण करने वालों के लिए मृत्युदंड देने का भ
आदेश दिया।

जनहित में, अकबर ने देश में प्रचलित कुप्रथाओं, दास-प्रथा, बाल
विवाह, सती-प्रथा पर पाबन्दी लगा सीमित कर दिया जिसमें स्वेच्छा
सती होने वाली विधवा को ही मात्र अनुमति प्राप्त होती। मद्य-पान
शारीरिक और नैतिक दृष्टि से घृणित और त्याज्य मान मार्च सन् 158
में शराब का बनाना, बेचना और पीने पर पूर्णतया प्रतिबंध ल
दिया। अकबर ने जो सहिष्णुता, समानता और समन्वयवादिता की धार्मि
नीति अपनाई उसे जैन, हिन्दू, पारसी और ईसाइयों के अतिरिक्त क
मुल्लाओं, उलेमाओं और इस्लाम धर्म के कट्टर मुसलमानों की श्रेणियों

खुल कर विरोध किया, सम्मान नहीं दिया।

वह यह भली भाँति समझ चुका था कि विभिन्न लोग एक ही परम सत्ता की अनेकानेक विधियाँ अपना कर इच्छानुकूल पूजा-अर्चना करते हैं और इसीलिए वे अपने प्रगाढ़ संस्कारबद्ध भावों को त्यागना कतई पसन्द नहीं करते। अतः इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को निर्भय होकर अपनी रुचि के अनुकूल भगवद्भक्ति और भगवान की पूजा-अर्चना का अधिकार मिलना ही चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर सम्राट ने 1563 ई० में हिन्दुओं को तीर्थस्थानों में जाने की सुविधा ही नहीं दी उनसे लिए जाने वाला सवा छः रु० प्रति व्यक्ति यात्रा-कर भी समाप्त कर दिया गया। हिन्दुओं को सन्तुष्ट रखने के लिए साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु 1564 में अपने सलाहकारों और दरबारियों की सलाह के विरुद्ध अकबर ने जजिया कर भी बंद करने की घोषणा कर डाली। वह यह नहीं चाहता था कि हिन्दू जनता जजिया के आर्थिक भार से त्रस्त हो अपना धर्म परिवर्तन कर मुसलमान धर्म कबूलने को बाध्य हो जाए। अकबर कुरान का कट्टर हामी था जिसमें स्पष्ट किया गया है कि बलपूर्वक किसी को मजहब पर ईमान पर लाने पर बाध्य नहीं किया जा सकता। ऐसा कुकृत्य अनुचित ही नहीं निन्दनीय भी है।

इसी प्रकार पुर्तगालियों ने 15वीं शताब्दी में आक्रमण कर भारत पर आधिपत्य जमाना शुरू किया था किन्तु 1531 में दीव द्वीप पर गुजरात के सुलतान ने उन्हें खदेड़ दिया। थोड़े दिन बाद फिर पुर्तगाली सचेष्ट हो आगे बढ़ गोआ-दमन पर अधिकार करते दीव पर हमला किया। उस समय 1534 में मुगल सम्राट हुमायूँ तथा गुजरात सुल्तान बहादुरशाह के मतभेदों के चलते उनकी विजय हो गई और पूरी तरह से यहाँ पैर उन्होंने जमा लिए। दीव गुजरात के तट से मिला, अरब सागर से घिरा एक छोटा-सा द्वीप है— मात्र 11 किलोमीटर लम्बा और 3 किलोमीटर की चौड़ाई वाला। भौगोलिक दृष्टि से छोटा किन्तु हारबर (अर्थात् बन्दरगाह) होने के नाते यह ऐतिहासिक धरातल पर बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा क्योंकि गोआ और दमन द्वीप के साथ ही दीव पर भी नियंत्रण रखना आवश्यक था। कुछ प्रचलित मान्यताओं के अनुसार इस क्षेत्र पर पहले हिन्दू राजा जालन्धर का शासन

था जिसने दक्षिणी तट पर एक जालन्धर मन्दिर निर्माण कराया। तत्पश्चात् यहाँ 'चौड' तथा 'बघेल' राजपूतों ने शासन किया और 14वीं शताब्दी में एक शक्तिशाली मुस्लिम सुल्तान का शासन हुआ जिसकी राजधानी अहमदाबाद में बनी। इन्हीं द्वीपों पर पुर्तगालियों ने अपने अधिकार में 1961 तक शासन किया और 19 दिसम्बर, 1961 को भारतीय सेना ने 'आपरेशन विजय' के अभियान से इन्हें पुर्तगालियों से मुक्त करा भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया। लेकिन इस घटना से पूर्व दक्षिण में पुर्तगाली सक्रिय रहे थे।

अकबर के समय पुर्तगालियों ने अपना दबदबा बना रखा था। यहाँ के प्रमुख प्राचीन स्मारकों में 'सेंट पाल चर्च' था। ईसाई धर्मावलम्बियों की उन दिनों इतनी धाक थी कि इस छोटी-सी पुर्तगाली रियासत के लोग हज जाने वाले नागरिकों को गुजरते समय पकड़ कर अपमानित करते, दास बना कर बेच देते और स्त्रियों एवं बच्चों का अपहरण कर अत्याचार करते। सम्राट अकबर ने उन पुर्तगालियों का न कभी विरोध किया और न उन्हें भारतीय सीमा से खदेड़कर बाहर भगाने का प्रयास किया। इसके विपरीत सम्राट ने उन्हे तुर्कों पर आक्रमण करने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया। जब अकबर उन पुर्तगालियों से हज-यात्रियों की सुरक्षा का प्रबन्ध नही कर सका तो उसने हज-यात्रा पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया।

इतना ही नही, ईसाइयों ने एक कदम और आगे बढ़ कर अकबर के ईसाई होने की अनिवार्यता के संदर्भ में विचित्र बातें प्रचारित करवा दीं—'सम्राट ने अपनी सारी पत्नियाँ दरबारियों में बाँट कर केवल अपने लिए एक ही पत्नी रख छोड़ी है, कुरान नष्ट करवा दी, लाहौर में एक भी प्रति देखने को नहीं मिलती और न कोई मस्जिद नमाज के काम में लाई जाती है आदि। इन्हीं लोगों ने निराश होने पर उसे मक्कार तक कहा है।'

साथ ही कट्टर मुसलमानों, कठमुल्लाओं और मौलवियों ने अकबर के विरुद्ध इस्लाम विरोधी होने का आरोप लगाते हुए यह भी प्रचारित किया कि दीन-ए-इलाही चलाकर उसने स्वयं भगवान और पैगम्बर बनने की हिमाकत की। उसने स्वयं कुत्ते और सूअर पाले, 1583-84 में मस्जिदें अस्तबल में बदल दी गयीं, हिन्दुओं के पक्ष में गो-हत्या बंद करा सूर्य पूजा

की और हिन्दू संस्कारों के पर्वों को मानने लगा। हज भी मनाही कर नाम-करण में अहमद और मुहम्मद का उपयोग बंद करा दिया और जुआ खेलने और सूद लेने की अनुमति तक दे दी।

किन्तु अकबर के संबंध में उपर्युक्त आरोप बड़े लचर, थोथे और वास्तविकता से परे थे। अकबर ने न कभी अरबों की अवहेलना की और न मस्जिद और कुरान का अनादर किया।

उसने मात्र उन लोगों का दमन किया जो सम्राट के विरुद्ध मुल्ला का रूप धारण कर पढ़ाने के बहाने जनता में विद्रोही भावना को फैलाते। इन्हीं लोगों ने कुरान में स्वेच्छा से कुछ मनमाने अंश जोड़ दिए थे। ऐसी कुरानों की प्रतियाँ जाँच कर ही नष्ट करा दी गई थीं, इसी प्रकार उपयोग में न आने वाली मस्जिदें समय के अंतराल में जो गिर गयीं थीं, उन्हें अकबर ने नहीं गिराया।

मगर यह सच है कि इस काल में कुछ धार्मिक स्थल और इमारतें नष्ट की गईं जिनमें वीर सिंह बुन्देला द्वारा निर्मित ओरछा के मंदिर और महल, केशवराय का मंदिर (मथुरा) तथा गोकुल, वृन्दावन, हरिद्वार, इलाहाबाद, वाराणसी एवं अन्य हिन्दू तीर्थों के बहुसंख्यक मंदिरों के नाम उल्लेखनीय हैं।

मगर यह भी सच है कि अकबर ने अपनी बुद्धिमत्ता, कुशलता, उदारता और धार्मिक समन्वयवादिता के बल पर 1598 तक एक छोटे-से राज्य का पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण की नर्मदा नदी तक सहज ही में विस्तार कर लिया। तैमूरलंग जैसे क्रूर-अत्याचारी आक्रमणकारियों ने भारतीय जनता में जिस घृणा और विद्वेष की भावना को जन्म दिया था अपनी धार्मिक उदारता से उसे दूर कर हिन्दुओं में विश्वास अर्जित करने में उसने सफलता प्राप्त की थो।

अकबर ने अपने उच्च आदर्श, समन्वयवादी प्रवृत्ति, सहानुभूति, व्यापक भारतीय भावना के अनुरूप उदारता और सहिष्णुता के बल पर समाज में सुधार तो किए ही, सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारत को प्रगति के पथ पर बढ़ाने का साहस दिखाया। हिन्दुओं और मुसलमानों में व्याप्त

कुरीतियों की अनदेखी न कर धर्म की गुत्थियों एवं अंधविश्वासों की पहेलियों को सुलझाने के लिए अनेक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद फारसी में करवाया। कला, संगीत और साहित्य का असाधारण विकास भी इसी काल में हुआ। गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, सूरदास, रहीम, गंग और नरहरि आदि विद्वानों के अतिरिक्त फारसी कविता का सृजन करने वाले 59 कवियों में फैजी, गिज़ाली, उर्फी जैसे लोकप्रिय कवियों ने कसीदों, रुबाइयों, मसनवियों और ग़ज़ल के क्षेत्र में सर्वत्र प्रसिद्धि एवं प्रशंसा प्राप्त की जिसका सीधा श्रेय राष्ट्रीय एकता के महान शिल्पी अकबर महान को जाता है।

सूफी संत सरमद

संत सरमद का एक छोटा-सा परिचय ही प्राप्त होता है कि वह भारतवर्ष में व्यापार करने की नीयत से यहाँ आया था। एक व्यापारी इस देश में आकर बसा और वह भारत का ही होकर इसी में रम गया। उसने प्रेम करना सीखा और अंतिम क्षण तक प्रेम का दीवाना बनकर लोगों में प्रेम बाँटते-बाँटते ऐसा दिगम्बर अवधूत फकीर बन गया कि अपना तन, मन और धन सभी कुछ लुटा बैठा।

उस मस्ताने संत सरमद ने स्वयं अपना परिचय देते हुए लिखा—

'सरमद कि बकूए इश्क बदनाम शुदी,
अज दीने यहूद सूए इस्लाम शुदी,
मालूम न शुद कि अब, खुदा वो अहमद,
बरगस्ता, बसूए लछमनो राम शुदी।'

अर्थात् कूचए-इश्क में फँस कर मैं सरमद ऐसा बदनाम हुआ कि कहीं का न रहा। अपनी सुध-बुध भूल सभी कुछ लुटा बैठा क्योंकि मैंने अपना यहूदी धर्म छोड़ दिया और इस्लाम के पावन चरणों में आकर बैठ गया।...और अब यह मुझे क्या हो गया कि उस इस्लाम के खुदा, अहमद व रसूल से भी मुँह मोड़ कर राम-लक्ष्मण के भक्तों की शरण में आ गया हूँ। था तो मैं ईरान का यहूदी।

कल का व्यापारी अचानक प्रेम का दीवाना बन गया—कितनी शक्ति और चमक है उस प्रेम की बिजली में—

'सौदे के लिए बरसरे बाजार हुए हम,
हाय ! उसके बिके जिसके खरीदार हुए हम।'

व्यापारी सरमद के वे सुनहरे दिन अपने जीवन के सामने नाच गये जब एक घोड़ी पर सवार औरंगजेब को हाथियों के युद्ध प्रदर्शन के समक्ष एक हाथी ने अपनी भयंकर टक्कर से मनोरंजन स्थल के सभी दर्शकों को हतप्रभ कर डाला। अगर राजा जयसिंह और भाई शुजा तत्काल सहायता के लिए मैदान में न उतरते तो मस्त हाथी उसे मार कर ही दम लेता। प्राणों की रक्षा भाई ने की किन्तु औरंगजेब अपने पिता शाहजहाँ के सम्मुख चिल्ला रहा था—'यह दारा शिकोह के षड़यंत्र का हिस्सा था। वह मुझे जानबूझकर हाथी के पैरों तले रुँदवा कर मरवाना चाहता था—वरना वह मुझे बचाने मैदान में आया क्यों नहीं ? वह भाई नहीं, मेरा दुश्मन है।'

पिता ने पुत्र को समझाया—'दारा शिकोह दूर होने की वजह से समय पर नहीं पहुँचा।' औरंगजेब को किसी से कुछ सुनना पसंद नहीं था, अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। सरमद को शाहजहाँ के निकट ही तमाशा बना दिया उसने जब दारा का पक्ष ले वह मुँह खोलना चाहता था।···व्यापारी मौन खड़ा रहा।

उसी औरंगजेब के हृदय में उपजी घृणा और वैमनस्य की आग दिन दूनी रात चौगुनी फैलती गई। दिल्ली के तख्त पर बैठने का स्वप्न पूरा करने के लिए उसने अपने तीनों भाइयों शुजा, मुराद और दाराशिकोह को छल से मौत के घाट उतार अपने पिता शाहजहाँ को वृद्धावस्था में बंदी बना किले में कैद कर लिया। वही औरंगजेब मुगल सम्राट था आज।

प्रभु-प्रेम के नशे में चूर सरमद सभी कुछ देखने के लिए आज विवश था क्योंकि औरंगजेब उसे अपने बड़े भाई दारा का गुरु मानता था। सूफी संतों का अनन्य भक्त होने के नाते दारा ने उसे आजीवन आदर दिया, तन, मन, धन से सेवा-शुश्रूषा की—ऐसे प्रिय शिष्य की स्मृतियों को वह कैसे भुला सकेगा ! सरमद के भक्तों की संख्या औरंगजेब के अत्याचारों से कम नहीं हुई थी। देश के मुसलमान ही नहीं हिन्दुओं के मन में भी उसके प्रति अपार श्रद्धा, स्नेह और आदर था। औरंगजेब की आँखों में सरमद बराबर खटकता रहा।

पंजाब में सिख, मध्य प्रदेश में बुन्देले, दक्षिण में मराठे मुस्लिम सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंकने पर उतारू थे। पश्चिमोत्तर क्षेत्र की पराजय से

राजपूतों के हौसले भी बुलंद थे। ईर्ष्यालु औरंगजेब का शंकालु होना स्वाभाविक था।

औरंगजेब अपनी नई कूटनीति के सहारे अकबर द्वारा क्रियान्वित समस्त नीतियों को पूरे तौर पर उलट कर इस्लाम को अधिक सबल बना तैमूरियों के साम्राज्य को इस्लामी शासन में परिवर्तित कर डालना चाहता था।

सरमद जनता में काफी लोकप्रिय था। शाही खानदान और कुछ शासन के ऊँचे अधिकारी तक के उसके मुरीद होने के कारण उस पर हाथ डालने का अर्थ औरंगजेब के लिए बगावत को न्यौता देना था। इसलिए उसने कट्टरपंथी मौलवियों और मुल्लाओं की जमात को उसके खिलाफ खूब भड़काया।

वह ईरान से सिंध होता हुआ दिल्ली पहुँचा था। कहते हैं कि जब वह सिंध के एक नगर ढट्टा में था तो उसकी प्रेमिका ने उसे धोखा दिया। एक दिन सरमद का वही सांसारिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम में परिवर्तित हो गया— उसने परमात्मा को सच्चे मायने में जान लिया था। सरमद ने इस्लाम धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन तो किया ही था वह फारसी के ज्ञाता होने के कारण फारसी में रुबाइयाँ और शायरी भी लिखता।

दाराशिकोह के पुस्तकालय की अलमारी से गुप्तचरों को दो पत्र हाथ लगे जो आलमगीर के सामने रखे गये, पहले पत्र में लिखा था—

'दारा बनाम सरमद

पीर व मुर्शिद ! मैं प्रतिदिन आपके दर्शन का इरादा करता हूँ, लेकिन यह पूरा नहीं होता। यदि 'मैं' वाकई 'मैं' हूँ तो मेरा यह पक्का इरादा और उद्देश्य पूरा क्यों नहीं होता? और यदि मैं कुछ भी नहीं तो, मेरा कसूर ही क्या है ? अगर हुसैन का वध परमात्मा की मर्जी से ही है, तो यजीद दंड का भागी क्यों ?···और यदि परमात्मा की आज्ञा नहीं थी, तो इसका अर्थ है कि आदमी जो चाहता है, करता है।

इस्लाम के पैगम्बर इस्लाम के अपराधियों के विरुद्ध सेना इकट्ठी करते थे लेकिन इस्लाम की सेना को एक दिन पराजय का मुँह देखना पड़ा था। विद्वान् क्यों कहते हैं कि यह एक सबक था वस्तुतः जो लोग अपने व्यक्तित्व

में ही पूर्ण हैं, उनके लिए सबक की जरूरत क्या ?'

दूसरा पत्र सरमद का उत्तर था जिसमें लिखा था—

'मेरे प्रिय मित्र !

हमने जो कुछ पढ़ा, भूल गये, सिवाय जिक्रे-महबूब, जिसे बार-बार करते हैं।'

पत्रों के साथ गुप्तचरों की गोपनीय रिपोर्ट थी कि सरमद ने दारा शिकोह की विजय के लिए सदा दुआएँ दी थीं। हो सकता है यह फकीरी दीवाना हुकूमत के खिलाफ बगावत में शरीक हो।

नित्यप्रति आलमगीर शाहजहाँ की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने जाते। एक दिन रास्ते में सरमद को निर्वस्त्र (नंग-धड़ंग), दिगम्बर घूमते देख औरंगजेब ने झुंझलाकर रोषपूर्ण शब्दों में कहा—'आम रास्ते में आप इस तरह नंगा न बैठा करें। आपके निकट जो कम्बल पड़ा है, उसे ओढ़ लिया करें, तो हर्ज क्या है ?'

सरमद ने बड़े गुस्से से औरंगजेब को नीचे से ऊपर तक देखते हुए उत्तर दिया—'ला तू ही उढ़ा दे, तो मुझे एतराज क्या ?'

औरंगजेब ने आगे बढ़कर धरती से कम्बल का एक कोना पकड़ ज्यों ही ऊपर उठाने का प्रयास किया तो उसके नीचे कुछ ताजे कटे नर-मुंड नजर आये, जो लाल खून से लथपथ थे और रक्त जिनसे रिस रहा था। उन्हीं में उसके तीनों भतीजों और उनके सहयोगियों के चेहरे भी शामिल थे।

इस भयावह दृश्य को देखते ही आलमगीर के हाथों से जब भयभीत मुद्रा में कम्बल नीचे गिर गया तो सरमद ने प्रश्नवाचक शब्दों में पूछा—'अब तू ही मुझे बतला दे, तेरे ऐबों पर पर्दा डालूँ या अपने सिर को छिपाऊँ ?'

बादशाह सलामत हैरतअंगेज़ कदमों से ऐसी खामोशी के साथ मुड़े कि सरमद की शक्ल दूर तक दिखाई न दे।

औरंगजेब एक पक्का मुसलमान था। वह रोज़े-नमाज़ का पाबंद और अल्लाह पर विश्वास करता था। खिलाफत के आदेशानुसार इस्लाम के विस्तार को अपना एकमात्र कर्तव्य समझता। अकबर और जहाँगीर द्वारा

बलाई तमाम प्रथाओं को उसने बंद करने के तत्काल आदेश दे दिए। अवज्ञाकारियों को दंड के लिए काजी के सुपुर्द किया गया। संत सरमद के सामने सब हुआ—वह मौन था।

हिन्दू विधि से परस्पर नमस्कार करना, हिन्दू राजाओं का तिलक करना, पशुओं और मनुष्यों की मूर्तियों को रखना निषेध करार दिया गया। स्त्रियों का मजार पर जाना बंद कर पुरानी मस्जिदों की मरम्मत की जाने लगी और उनके लिए इमाम, मुअज्जी नियुक्त किए गये। संगीत का बहिष्कार कर संगीतज्ञ शासन से निकाल दिए। बेचारे क्या करें, कहाँ जाएँ, सरमद क्या बताये?

हिन्दू पाठशालाओं, हिन्दू मेलों तथा हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों पर रोक लगाकर राजपूतों के अतिरिक्त हिन्दुओं को हथियार साथ लेकर अथवा हाथी, घोड़ों और पालकियों पर चढ़कर चलने की मनाही की गई।

सन् 1659 में औरंगजेब ने फर्मान द्वारा मन्दिरों के निर्माण पर रोक लगा दी। सन् 1666 में मथुरा के केशवराय मन्दिर के पत्थर का घेरा तुड़वा आदेश दिया कि साम्राज्य के समस्त नये मन्दिरों को गिरवा दिया जाए और जीर्णोद्धार न होने दिया जाए। आदेश के अनुसार कर्मचारियों ने केशवराय (मथुरा) का मन्दिर तोड़ने के साथ-ही-साथ प्रयाग, काशी, अयोध्या, हरिद्वार आदि तीर्थस्थलों के सहस्त्रों मंदिरों को ढहा दिया। स्थानीय हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भीषण संघर्ष और रक्तपात होने पर राज्य की सैनिक सहायता से विजयी होने पर कट्टर मुसलमानों ने पुराने मंदिरों को भी गिरा डाला। फकीर सरमद की आँखों में न नींद थी, न चैन, आँसू झरते रहते।

एक दिन सरमद दिगम्बर (नंग-धड़ंग) अवस्था में निर्वस्त्र बाजार से गुजर रहा था। कठमुल्लाओं ने काना-फूसी की, सैनिकों से शिकायत पर सरमद को बंदी बना लिया गया। सम्राट औरंगजेब के सम्मुख पेश करने पर बादशाह ने फिर सरमद से प्रश्न किया—'सरमद, तू नंगा क्यों रहता है? कपड़ों में बोझ कितना है जो पहनना पसंद नहीं करता?'

सरमद मुस्कराया और मौन हो गया। बादशाह के पुनः प्रश्न दोहराने

पर उसने कहा—

'औकस कि तुरा ताजे जहाँबानी दाद,
मारा हमा असबाबे परेशानी दाद।
पोशाँद लिबास हरकेरा ऐबे दीद,
बे ऐबोंरा लिबास उरयानी दीद।'

अर्थात् जिसने तुझे यह बादशाहत का ताज अता किया है, उसी ने इस परेशानी का सामान मुझे दिया है। उसने जिसे दोषों वाला समझ लिया, ऐबों वाला पाया, उनको लिबास पहना कर उसके ऐबों को ढक दिया।···और जिन्हें उसने बेऐब देखा—निर्दोष पाया, उसे बिना लिबास पहनाए दिगम्बर अवस्था में भी घूमने का अधिकार दे दिया। उसे उरियानी का लिबास दे डाला—एकता के मसीहा की वाणी में ओज था, औरंगजेब तख्त पर निरुत्तर बैठा सरमद की आँखों से निकलती आग की ज्वाला देख रहा था।

कठमुल्लाओं और उलेमाओं ने सम्राट को सलाह दी कि सरमद को दिगम्बर बाजार में घूमने के अपराध में कत्ल का हुक्म सुनाया जा सकता है क्योंकि यह भी संगीन जुर्म है। आज औरंगजेब सरमद के सामने मौन था—वह जानता था कि सरमद के भक्त यदि शत्रुओं के सहयोगी बन सहायता करने लगें तो राज्य में विद्रोह की आग बुझाई नहीं जा सकेगी। सरमद को बंधनमुक्त कर दिया गया।

सरमद राजदरबार से निकल जब सड़क पर आया तो प्रेम की मदिरा में मस्त हो बड़ी तन्मयता से पुनः गाने लगा—

'हर चन्द कि सद दोस्त बमन दुश्मन शुद,
अर्ज दोस्तीये-यके दिलम् एमन शुद।
बहदत बगज़ी दे मोज कसरत रस्तेम,
आखिर सन अज़ो शुदमोऊ अजमन शुद।''

अर्थात् कल जो मेरे सैंकड़ों मित्र थे, वे सभी आज मेरे शत्रु बन गए हैं। किन्तु मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मैंने तो अपने एक ही प्रभु से मित्रता की है—उसी की दोस्ती के भरोसे मुझे शांति है···और मैं सन्तुष्ट और सुखी हूँ।

'अनेकता को छोड़ कर मैंने एकता का मार्ग चुनकर उसे अपनाया है। उसी के फलस्वरूप आज यह परिणाम निकला कि वह 'मैं' हो गया और मैं 'वह' हो गया। सारा भेद-भाव हो जाता रहा, दुई का परदा ही उठ गया और हम दोनों एक हो गये।' उसका भ्रम टूट गया प्रार्थना सम्भवत: साकार हो उठी—

'मुझ में समा जा इस तरह तन, प्राण का जो तौर है,
जिसमें न कोई कह सके, 'मैं' और हूँ 'तू' और है।'

औरंगजेब परेशान था। सरमद पर हाथ डालने से पूर्व वह पक्के सबूत जुटाने के पक्ष में था। सारा शासन तंत्र इस्लाम के नाम पर जहाँ हिन्दुओं पर जुल्म करने पर अमादा था वहीं सरमद को किसी-न-किसी प्रकार के जुर्म में फँसाकर मृत्युदंड देने के लिए भी प्रयत्नशील था—वह दारा का प्रबल पक्षपाती और इस्लाम विरोधी है। सरमद को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। सच यह भी है कि औरंगजेब ने सन् 1669-1670 में व्यापक ढंग से हिन्दुओं के देवालयों को क्षति पहुँचाकर उन्हें भी नाना प्रकार से प्रताड़ित करने का यत्न किया।

सन् 1665 में औरंगजेब ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए 'आयात तथा निर्यात कर' मुसलमानों की अपेक्षा दुगना लेना शुरू कर दिया, जिसे मुसलमानों से सन् 1667 में लेना कतई बंद करा दिया। सन् 1671 में अपने आदेश द्वारा हिन्दुओं को पेशकारों तथा दीवानों के पदों से मुक्त कर उनके स्थान पर मुस्लिमों की भर्ती की गई। पदच्युत लोग यदि मुसलमान बनना स्वीकार लें तो उन्हें पुराना पद पुन: प्राप्त होने में कठिनाई नहीं होगी। पंजाब के सैकड़ों लोगों ने मुसलमान बन कर सरकारी पदों पर नियुक्तियाँ प्राप्त कर लीं। धर्म परिवर्तन को अस्त्र बना कर हिन्दुओं के विरुद्ध चला कर अधिकाधिक संख्या में बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। इस अस्त्र के शिकार निर्धन लोग अधिक हुए। हिन्दुओं को और अधिक त्रस्त करने के लिए सम्राट ने 1679 में 'जजियाकर' फिर से लगा दिया, धर्म परिवर्तन करने वालों को धन दिया, नौकरियाँ दीं और कभी-कभी सम्मानपूर्वक हाथी पर चढ़ा कर घुमाया भी गया। आलमगीर की जयजयकार भी हुई। पर मनमौजी सरमद अपने प्रभु के प्रेम में बड़ी

तल्लीनता से गाता फिरता—

'शाहे शाहानेम् जाहिद ! चूं तो उरियां नेस्तम्,
शौकों—जौकं शोरशम् लेकिन परेशां नेस्तम्।
बुत-परस्तम् काफिरम् अज अहले-ईमां नेस्तम्,
सूए मस्जिद मीरवम् अम्मा मुस्लमां नेस्तम्॥'

अर्थात् आततायियों को सम्बोधित करते हुए संत सरमद ने कहा—'ऐ जाहिद ! मैं बादशाहों का बादशाह हूँ—तेरी तरह नंगा, कंजूस नहीं हूँ। मूर्ति पूजक और काफिर हूँ किन्तु ईमान वाले मुसलमानों से मैं कहां अलग हूं। यों मैं कभी-कभी मस्जिद की तरफ भी निकल जाता हूँ—पर सच मान, मैं मुसलमान नहीं हूं।'

ऐसे प्रेम-पगे दीवानों का कहीं कोई भी दीन नहीं होता—

'आता है वज्द मुझको हर दीन की अदा पर,
मसजिद में नाचता हूँ नाकुश की सदा पर।'

अर्थात् जहां भी प्रेम दीवानों को अपने प्रियतम के चरणों का दर्शन मिलता है वे श्रद्धापूर्वक अपने सर रख दिया करते हैं—पावन समझ कर।

कुछ समय के अन्तराल में औरंगजेबी सहायकों ने सरमद की रुबाइयों पर जुर्म कायम करने का साहस जुटाया—

'आंकस कि सिरे हक़ीक़तश् बाबर शुद,
खुद पहनतर अज सिपहरें—पहनावर शुद,
मुल्ला गोयद् कि बर फ़लक शुद अहमद;
सरमद गोयद् फ़लक ब अहमद दरशुद।'

अर्थात् जिस व्यक्ति को परमपिता परमात्मा की सत्ता और महत्ता पर विश्वास जम गया—और जो भी उसके स्वरूप को समझ गया वह स्वयं आकाश से भी महान हो गया। मुल्ला का तो मात्र यह कहना है—मुहम्मद आसमान पर खुदा से मिलने गए, पर सरमद तो यह कहता है—आसमान मुहम्मद में समा गया।

वेदान्त के रस में भीगी रुबाइयों का अर्थ विद्वान् उलेमाओं और मौलवी-मुल्लाओं ने औरंगजेब को समझाते हुए कहा—'इस्लाम विरोधी

सरमद अब मुहम्मद साहब के सशरीर आकाशगमन (मुराजे जिस्मानी) के मोजिजे को भी इंकार कर, स्वीकारता नहीं। इसलिए बन्दापरवर, सरमद काफ़िर तो है ही, वह इस कुफ्र की सजा मौत को पाने का हकदार है, उसे मृत्युदंड अब देने में कोई कानूनी अड़चन नहीं आती।'

औरंगजेब ने बड़ी गम्भीरता से सभी पहलुओं पर आला हुक्मरानों से विचार-विनिमय किया। कुछ ने सलाह दी कि सरमद इस प्रकार अपनी कोई नई बात नहीं कह रहा—इसी प्रकार की अन्य सूफी संतों ने भी रुबाइयों की रचना की है। पर औरंगजेब को मात्र एक बहाना चाहिए था। किसी भी प्रकार दारा के गुरु को सूली पर लटकाने के पश्चात् ही वह चैन की नींद सो सकता है। उसने सरमद के विरुद्ध क़त्ल का फ़तवा दिलवा दिया कि काफिर अल्लाह के वजूद को ही नकारता है, इसलिए उसे इस जुर्म की सजा मौत मिलनी ही चाहिए।

सरमद जैसे मस्ताने संत को मौत से डर होता भी क्यों? उसने फ़तवे की चर्चा सुनी तो ठहाका मार कर ऊँची आवाज में सड़कों पर गुनगुनाता दिखाई दिया। जैसे वह लोगों से चीख-चीख कर कह रहा था—

'मौत यह मेरी नहीं, मेरी कज़ा की मौत है,
क्यों डरूँ इससे कि फिर मर कर नहीं मरना मुझे।'

बात औरंगजेब के कानों तक पहुँचाई गयी तो उसने चिन्तित हो अपने आला विद्वानों की राय जाननी चाही। एक मौलवी ने अपनी राय जाहिर की—'हुजूर सही फरमाते हैं। शम्सतबरेज़ ने इससे पूर्व यहाँ तक बयान किया है—

'चे नादाँ बूद आँ मजनूँ,
कि आशिक़ गस्त बर लैली।
चो लैली रुक़ अज़ दस्तश,
परेशा मांद दर खैली॥
अजब मन शम्सतबरेजम!
कि आशिक गस्ता अमबर ख़ुद;
चो ख़ुद दर ख़ुद नजर कर दम,
न दीदम जुज़ ख़ुदा दर ख़ुद॥'

अर्थात् मजनूं कैसा मूर्ख था, जो लैला पर ही आसक्त हो गया, और जब लैला एक दिन उसके हाथ से निकल गयी तो पागलों की तरह सड़कों पर मारा-मारा भटकता रहा। व्याकुलता से दर्द में डूबा मजनूं इधर-उधर 'लैला-लैला' पुकारता फिरता रहा।

परन्तु वाह रे मैं! कैसा विचित्र प्रकार का शम्सतवरेज़ हूँ जो अपने ऊपर आप ही आसक्त होकर इस प्रकार खो गया हूँ कि जहाँ भी मेरी नज़र जाती है, वहीं स्वात्मा के सिवा और कुछ भी नज़र आता ही नहीं—

'जिधर देखता हूँ, जहाँ देखता हूँ,
मैं अपनी ही ताब और शाँ देखता हूँ।'

'इसीलिए आलमपनाह! यह पगला फकीर जिसे बड़ा पहुँचा हुआ लोग बताते हैं—हकीकत में कुछ है नहीं—पुरानी ढपली पर नए अन्दाज़ के बेसुरे सुर अलापता है। कभी कहता है—अपनी निगाह जिस दिन टेढ़ी हो गयी तो पल में तमाम दिल्ली उलट कर रख सकता हूँ। खेलो, खाओ, मौज़ उड़ाओ पर गरीब को न छेड़ो।—ऐसे मस्ताने को छेड़ना हरगिज़ बेहतर नहीं।'

वार्त्ता का क्रम पूरा भी न हुआ था कि बुज़ुर्गवार इमाम साहब ने बाअदब बादशाह को सलामी देते हुए फरमाया—'हुज़ूर, कल ईद के मौके पर चन्द लोगों ने सरमद को जब 'नंग-धड़ंग' देखा तो उन्होंने पुरज़ोर गुजारिश की कि आप हमारे ऊपर करम फरमाएँ और कपड़े पहन कर ईद की नमाज़ में शिरकत करें। बन्दा परवर! उस मस्ताने फकीर ने लोगों के कहने पर उनके दिए हुए नए-नए कपड़े तो पहने और नमाज़ में शरीक भी हुआ।

'जामा मस्जिद की नमाज़ में हुज़ूर, लोगों का हजूम था तो अन्दाज आप लगा ही सकते हैं। अचानक उसे न मालूम क्या शरारत सूझी, नमाज़ की कतार से बाहर निकल भागते हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगा —इमाम की नीयत मेरे पाँव के नीचे···इमाम की नीयत मेरे पाँव के नीचे···इमाम की नीयत मेरे पाँव के नीचे।'

सम्राट औरंगजेब की त्यौरियाँ चढ़ गयीं, उसकी आँखों में सुर्ख खून की डोरियों का जाल ज्वार-भाटे के समान दौड़ने लगा।

तभी इमाम साहब ने साहस बटोर फिर कहा—'बन्दापरवर उस मक्कार की हरकतों पर अगर काबू न पाया गया तो पानी सर से ऊपर निकल जाएगा।'

एक अन्य चाटुकार विचारक ने उस वक्ता की राय पर अपनी दूर की कौड़ी फेंकते हुए औरंगजेब को सभा में समझाया—'हुज़ूर, वह तो काफिर ही है प्रमाण की अधिक जरूरत ही कहाँ ? मुसलमानों का पूरा कलमा है—

'ला इलाह-इल्-अल्लाह मुहम्मदर्रसूल अल्लाह।'

अर्थात् दुनिया में नहीं है कोई पूज्य सिवाय अल्लाह व अल्लाह के रसूल मुहम्मद के। सूफ़ी संत लोग इसी कलमा को आधा पढ़ते हैं—'ला इलाह-इल्-अल्लाह' (नहीं है कोई—पूज्य, अल्लाह को छोड़ कर) वे इतना ही कलमा पढ़ते हैं।

'पर सरमद तो उनसे भी दो कदम आगे है—वह तो आधा कलमा भी नहीं पढ़ता केवल वह यही कहता है—'ला इलाह' और उसके बाद मौन हो जाता है। हुजूर, वह नास्तिक है। उसे बुला कर सभा में कलमा पढ़ने का हुक्म दिया जाए। हाथ कंगन को आरसी क्या ? आपके सामने भी वह पढ़ेगा—'ला इलाह।' अर्थात् 'नहीं है कोई प्रेमास्पद या पूज्य !' जाहिर है सरमद काफिर है, इस्लाम विरोधी है, नास्तिकता की बू इसकी आवाज़ में सुनाई पड़ती है। उसे दरबार में बुलाया जाए, वही इस रहस्य से पर्दा उठा सकता है।'

दीवाने फकीर सरमद को औरंगजेब के दरबार में पेश कर कलमा पढ़ने का आदेश सुनाया गया। एक बार सरमद ने पूरे दरबार पर नज़र डालते हुए सम्राट से आँख मिला कर कलमा पढ़ा—'ला इलाह।' और वह मौन हो अपने में जैसे खो गया। सारे दरबार में कोलाहल गूँजने लगा, सभी को मौलवियों की ऊँची चीखने की आवाज़ें सुनायी पड़ीं 'काफिर, आगे तो कलमा पढ़, बुत बना क्यों खड़ा है ?'

औरंगजेब ने सरमद से मौन रहने का रहस्य जानना चाहा।

सरमद ने भरी सभा में मुस्कराते हुए अनोखे अंदाज में केवल इतना ही कहा—'बादशाह सलामत ! मैं अभी तो अभाव के समुद्र में ही गोते लगा

रहा हूँ। जब मैंने अभी अल्लाह के साक्षात्कार की सीमा को छुआ तक नहीं (मर्तबए-अस्बात), उस हद तक पहुँचा भी नहीं। ऐसे हालात में 'ला इलाह इल-अल्लाह' कह कर उसकी शान में कैसे झूठ बोलूँ ? जो बात दिल ही में नहीं आई, उसे जुबान पर कैसे लाया जा सकता है ?' उसने हँस कर आगे कहा—'सच है।'

'जाहिरो बातिन की इक रंगी कमाले इश्क़ है,
नाम उसी का लब पर है जिसकी मुहब्बत दिल में है।'

मौलवियों की सामूहिक आवाज में क्रोध का उबाल इतना उछला कि दरबार में सिर्फ इतना ही स्पष्ट सुनाई पड़ा—'यह तो सरासर कुफ्र है। अगर सरमद इसके लिए तोबा न करे, तो जिबे क़त्ल का हकदार है।'

मुल्लों की दौड़ मात्र मस्जिद तक थी। चाटुकार केवल सम्राट को प्रसन्नचित्त देखना चाहते थे। इससे बेहतर प्रमाण और क्या जुटाया जा सकता था। सभी ने एकमत हो स्वीकार किया—'सरमद इस्लाम विरोधी है, काफिर है, नास्तिक है और इससे बड़ा जुर्म इस्लाम धर्म में अन्य कोई हो ही नहीं सकता—इसका क़त्ल करना जायज़ है।'

संत सरमद की कल्पना-भरी उड़ान ऊंची थी। कम अक़्ल लोगों के दायरे से बहुत बड़ी, सीमाहीन, विस्तृत अंतरिक्ष की गहराइयों से भी ऊपर, भला उस तक वे कर्महीन पहुँच भी कहाँ सकते थे ?

भयभीत कूटनीतिज्ञ औरंगजेब इस सुनहरी अवसर को अपने हाथों से फिसलने नहीं देना चाहता था। धर्म के नाम पर सरमद को नास्तिक और अपराधी करार दे पहली दी हुई क़त्ल की सजा बरकरार रखी गई।

दिल्ली जामा मस्जिद पर सरखुश (पानीपती), नासिर अली सरहिन्दी व अब्दुल कादिर 'बेदिल' ने एक दिन मौत से पहले संत सरमद को हँसकर एक शेर पढ़ते हुए सुना—

'देर अस्त कि अफसानाए मंसूर कुहन शुद,
अकनूँ सरे नौ जलवा दिहम दारो रसन रा।'

अर्थात् बहुत दिन गुजर गए, मंसूर की कहानी आज पुरानी पड़ गई। वह किस्सा शायद लोग अब भूल गए हैं। मैं शूली पर चढ़कर फिर उसकी याद ताजा कराने जा रहा हूँ। मैं फिर एक बार दार और रसन का जलवा

चमका कर ही दम लूंगा।' मंसूर को 'अनलहक'—नहीं है कोई परमात्मा के सिवाय—कहने पर, फाँसी दी गई थी।

सभी श्रोताओं ने आश्चर्यचकित मुद्रा में दीवाने फकीर सरमद की घोषणा सुनी तो उत्सुकता हुई जानने की, कल क्या होगा? प्रेमियों और दर्शनार्थियों के समूह ने उनसे विनम्रता से अनुरोध किया तो निडरता से मुस्कराते हुए वे बोले—

'सर जुदा क़र्द अज सनम शोख़े किबामायार बूद,
क़िस्सा कोताह कर्द वर्ना दर्दे सर बिसयार बूद।'

अर्थात ऐ दोस्तो! मेरा प्रियतम बड़ा मेहरबान, मगर शोख़ है—उसने मेरे सर को ही शरीर से जुदा करने का निश्चय कर डाला है—सारा क़िस्सा ही ख़त्म हो जाएगा तो सारा दर्दे-सर मिट जाएगा। दर्दे-सर से, मैं तो बड़ा ही परेशान था। अच्छा है, उसे दूर करने के लिए उसने ख़ुद मेरा इंतजाम कर दिया, मुझे उससे बड़ी परेशानी थी। शायर ने सच ही तो कहा है—

'मौत आपको मिल जाए रिहाई 'बिस्मिल',
कुछ दिन के लिए हम हैं गुलामे हस्ती।'

आखिरकार वह दिन भी आ गया जब लाखों की भीड़ उस वधस्थल की ओर बढ़ी जा रही थी जहाँ सरमद का सर क़लम किया जाना था। दर्शनार्थियों में बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी अपने हरदिल अज़ीज संत की कुर्बानी को दुखी हृदय से आँखों में आँसुओं की कतारें रोकते हुए एक-दूसरे के पीछे अपने कदम बढ़ाते चल रहे थे। भीड़ इतनी थी कि उसका ओर-छोर दूर-दूर तक नज़र दौड़ाने पर भी आँखों में बाँधा नहीं जा रहा था जैसे भीड़ का समुद्र अपने पूरे उफान पर हो। प्रत्येक व्यक्ति उस रहनुमा के अंतिम दर्शन करने का अभिलाषी था जैसे उनकी प्रिय वस्तु अचानक ही उनसे छिनने जा रही थी।

लोग चुप थे, जुबानें बंद थीं, आँखें नम थीं, चेहरे मौन, मुरझाए हुए —क्योंकि यह फ़रमान दिल्ली के बादशाह मुगल सम्राट औरंगजेब का था—'सरमद शूली पर चढ़ाया जाए, वह ख़ुदा को नहीं मानता।'

जेल के सैनिक भी सरमद को लिए वधस्थल की ओर तेजी से बढ़ रहे

थे और वह अलमस्त फकीर उनके कदम-से-कदम मिलाता आत्मविभोर मुद्रा में प्रभु से गुनगुनाते हुए निवेदन कर रहा था—

'बजुर्मे इश्क़ तो अम् मीकुशन्द ग़ौग़ा एस्त।
तो नीज बरसरे बाम आकि ख़ुश तमाशा एस्त ॥'

अर्थात् मुझको तेरे इश्क़ के जुर्म में मारा जा रहा है। जरा तू भी तो अटारी पर चढ़कर देख—कितना मजेदार तमाशा है।

वधस्थल अब कुछ ही दूरी पर सामने नजर आने लगा था। जल्लाद अपनी डरावनी काली पोशाक में बड़ी मुस्तैदी से हाथ की पैनी तलवार उस कोलाहल-भरे वातावरण में जब घुमाने लगा तो सरमद उसके सामने एक क्षण के लिए रुका और अपनी आँखों से चारों दिशाओं को झाँकते हुए मुस्करा कर बोला—

'फिदाए तो शबम् बिया बिया
कि तो बहर सूरते कि मी आई,
मन तुरा खूब मीशनासम्।'

अर्थात 'आ, आ, मेरे प्यारे। मैं तुझ पर बारी-बारी जाऊँ, कुर्बान जाऊं। तू चाहे जिस प्रकार का भेष और सूरत में मेरे सामने आएगा, मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं—मैं तुझे खूब अच्छी तरह पहचानता हूँ।'

शायर ने झूठ नहीं फरमाया—

'तनहा न उसे अपने दिले तंग में पहचान,
हर बाग़ में, हर दस्त में हर संग में पहचान,
बेरंग में, बारंग में, नैरंग में पहचान;
मंजिल में, मुक़ामात में, कर संग में पहचान।
हर राह में, हर साथ में, हर संग में पहचान,
हर अज़्म इरादे में, हर आहंग में पहचान,
हर आन में, हरबान में, हर ढंग में पहचान;
आशिक़ है तो—दिलवर को, हर रंग में पहचान।'

संत सरमद की आँखों के सामने जल्लाद की लपलपाती तलवार में अपने प्रियतम की मनमोहिनी सूरत ही दृष्टिगोचर हो रही थी—जिसके दर्शन के लिए वह आतुर था, जिसकी आस्था और प्रेम के लिए वह

भटकता रहा जीवन-भर सड़कों पर।

सचमुच आज उसके लिए सौभाग्यशाली दिन था जो लम्बे अन्तराल की चिर प्रतीक्षित मनोकामना उसकी इच्छानुकूल पूरी हुआ चाहती थी। उसकी आँखों से जैसे आँसुओं की कतारें अपने प्रियतम के मिलन में उसके पावन पैरों को पखार रही थीं।

सूफी संत सरमद ने अपने समस्त जीवन-भर कभी भी 'ला इलाह' से अधिक आगे कलमे का कोई शब्द मुँह से बाहर न निकाला था। उसने वधस्थल पर अपने ढंग से ही कलमा पढ़ना शुरू किया—'ला इलाह'। तभी जल्लाद की लपलपाती तलवार की पैनी धार ने उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया। खून की उछलती धार ऊपर को प्रबल वेग से उफनकर ऊँचे स्वर में गूँज उठी—'ला इलाह-इल्-अल्लााह !···ला इलाह-इल्-अल्लाह !!···ला अलाह-इल्-अल्लाह···!!!'—-यह जनश्रुति ही है।

वधस्थल का सारा वातावरण अवाक् लोगों के मौन को तोड़ता हुआ एक बार फिर दुख के सागर में डूब गया था क्योंकि उनसे उनका प्रिय एकता का मसीहा सदा-सदा के लिए दूर बहुत दूर, अनन्त की समाधि में निमग्न सो गया था।

सूफी संत सरमद की समाधि आज भी जामा मस्जिद के सामने पूर्व की ओर हरी घास से ढकी नजर आती है जिसके नीचे एकता का मसीहा असीम निद्रा की गोद में पड़ा सो रहा है और जो यात्री जामा मस्जिद में दर्शनार्थ आते हैं वे प्रायः सरमद की समाधि पर भी अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाने का प्रयास करते हैं।

महामना मदनमोहन मालवीय

[1862-1946 ई०]

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध वर्षों को राजनीतिक चेतना का युग कहा जा सकता है जिसमें देश की महान विभूतियों ने जन्म लेकर राष्ट्रीय एकता के लिए अपने प्राणों की बाजी हँस कर लगा दी—ऐसे ही विशिष्ट युग-निर्माताओं में एक नाम स्वर्णाक्षरों में उभर कर आता है हिन्दूत्व समर्थक महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का जो भारतीय जागरण के जनक, क्रान्तद्रष्टा और सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी चमत्कारी युगपुरुष थे।

आपका जीवन प्रत्येक दिशा में अनुकरणीय रहा—धर्म, शिक्षा, पत्रकारिता, वकालत, नारी जागरण, अछूतोद्धार, भाषा, साहित्य, गोरक्षा, हरिजनोद्धार, आयुर्वेद, वेदान्त के अतिरिक्त संवैधानिक-असंवैधानिक स्वाधीनता संग्राम जैसे क्रांतिकारी क्षेत्रों में भी वे सदैव अग्रणी के रूप में सक्रिय रहे। वे व्यक्ति नहीं स्वयं में एक संस्था थे। नवीन भारत के निर्माताओं में राष्ट्रीय एकता के अद्भुत प्रतीक थे।

प्रयाग के मोहल्ला अहियापुर में कूँचा सांवलदास के भीतर एक खपरैली छतवाला छोटा-सा मकान था पंडित ब्रजनाथ कथावाचक का जो परम भागवत वैष्णव और भगवान कृष्ण के उपासक थे। उनकी पत्नी का नाम मूना देवी था जो एक सती-साध्वी, पति-परायण स्त्री थीं। पंडित ब्रजनाथ व्यास के पूर्वज मालवा राजा के अत्याचारों से पीड़ित हो प्रयाग में आ बसे थे। मालवा के मूल निवासी होने के कारण ही ये मल्लई या मलैया ब्राह्मण

कहलाए। इनके पितामह पंडित प्रेमधर भी भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ऐसे धर्मनिष्ठ परिवार में पंडित मदन-मोहन मालवीय का जन्म पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार सम्वत् 1918, अर्थात् 25 दिसम्बर, सन् 1861 ई० को सौभाग्यवती मूना देवी की कोख से हुआ था। पंडित ब्रजनाथ की जीविका कथावाचन पर निर्भर होने के कारण परिवार में निर्धनता थी इसीलिए बालक मदनमोहन को अक्षरारम्भ के लिए 'श्रीमदक्षर पाठशाला' में विद्यालय के संस्थापक विरक्त संन्यासी श्री हरदेव जी के श्रीचरणों में भेजा गया।

निर्धन पिता का मेधावी पुत्र देखने में अत्यन्त ही रूपवान, सुन्दर, गौर-वर्ण शरीर, बड़ी गर्वीली आँखें, नुकीली नाक, उन्नत ललाट और तेजस्वी प्रवृत्ति वाला बुद्धिमान बालक था।

9 वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार के समय बालक ने जब कौपीन पहन, मूंज की मेखला धारण कर, गले में माला और हाथ में दंड ले, कंधे पर झोली लटकाए परम्परानुसार माँ के निकट जा नत-मस्तक मुद्रा में कहा था—'भवति, भिक्षां मे देहि।' तब किसी को स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि यह मृगछाला और कौपीनधारी भिक्षु एक दिन नगर-नगर, गाँव-गाँव, द्वार-द्वार राष्ट्रीय एकता के लिए आजीवन भिक्षाटन करेगा। काशी विश्वविद्यालय का वही संस्थापक बनेगा, भारत माँ का मस्तक ऊंचा उठाते हुए अपना सर्वस्व न्योछावर कर डालेगा और वह देशसेवा को ही अपनी सच्ची उपासना मानेगा।

जब विद्याध्ययन किया, मन लगा कर किया। संस्कृत पढ़ी किन्तु अन्य साथियों की पुस्तकें देख अंग्रेजी पढ़ने की लालसा भी जागी किन्तु निर्धनता के पुजारी को इलाहाबाद के जिला स्कूल में ही भरती होना पड़ा। विद्यार्थी जीवन में गुल्ली-डंडा, कबड्डी और कसरत के प्रति विशेष रुझान रहा। व्यायाम तो उन्होंने आजीवन किया। किताबी कीड़े कभी नहीं बने। यज्ञो-पवीत के पश्चात् बालक मदनमोहन नियमित रूप से पूजा-पाठ में रुचि लेते। त्रिवेणी के किनारे दल-बल सहित संध्या का सामान लेकर मंदिर पहुंचते। 1879 ई० में 18 वर्ष की आयु में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्या-लय से हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर म्योर सेंट्रल कॉलेज में दाखिला ले

लिया। वहाँ से सन् 1881 ई० में मालवीय जी ने एफ० ए० करने के पश्चात् 1884 में बी० ए० भी कर लिया। एम० ए० करने की प्रबल इच्छा थी किन्तु गरीबी में परिवारिक बोझ के कारण पढ़ाई अधूरी छोड़ 50 रुपए मासिक वेतन पर मदनमोहन ने गवर्नमेंट हाई स्कूल, प्रयाग में अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया।

प्रयाग में एक गिरजाघर था, जिसके बाहर खड़े कुछ पादरी लोग स्कूल से जाते समय बच्चों को देख हिन्दू धर्म की बुराई कर गाली-गलौच करते हुए छींटाकशी करते। मदनमोहन को मौन सुनना न आता। उसने अपनी टोली भी ऐसी सुदृढ़ बना डाली जो अपने प्रभावशाली व्याख्यानों और शास्त्रों के माध्यम से उन मूर्ख पादरियों की पोल खोलते हुए मुँहतोड़ उत्तर देने लगे। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों से ओत-प्रोत युवक समाज और देश में व्याप्त कुरीतियों से संघर्ष करने के लिए जब जीवन के अखाड़े में उतरा तो लोगों ने दाँतों तले अंगुलियाँ दबा लीं। साहस, बुद्धि, उत्साह और निर्भीकता उसे अपने पिता और पितामह से विरासत में मिली थी। हिन्दू संस्कारों में पले, निर्धन ब्राह्मण की आत्मा अपने धर्म की निन्दा अधर्मियों से कदापि सहन नहीं कर सकती थी।

कामना ने अभीप्सा का रूप लेकर मार्ग प्रशस्त कर दिया था। 1885 में कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् अगले वर्ष 1886 में वे कलकत्ता अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के दूसरे अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में पहुँचे। भाषण का विषय था—'व्यवस्थापिका सभाओं में सुधार'। उन्होंने सभा-पति से मंच पर बोलने के लिए अनुमति माँगी। अनुमति मिल गई।

व्याख्यान जो मालवीय जी ने उस मंच पर दिया वह इतना प्रभाव-शाली और धारा-प्रवाह था कि श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर बड़ी तन्मयता से सुनते गए। जनता चकित थी, और तभी कांग्रेस के जन्मदाता श्री ह्यू.म.ने उनके व्यक्तित्व की सराहना की। उस दिन के सारगर्भित भाषण ने उनके जीवन की दिशा ही बदल कर रख दी।

कालाकाँकर के महाराज रामपाल सिंह भाषण सुन झूम उठे थे, उन्होंने मालवीय जी से अनुरोध किया कि वे दैनिक पत्र 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन स्वीकार कर लें। प्रतिमा को प्रकाश की किरण मिली। मालवीय

जी ने अध्यापन त्याग सम्पादकीय पद सशर्त स्वीकार कर लिया। अब वे अध्यापक से पत्रकार बन गए थे। किन्तु शर्त यह कि राजा जी कभी मद-होशी के समय न मालवीय जी से वार्ता करेंगे और न अपने निकट बुलाएँगे। ढाई वर्ष तक उन्होंने दैनिक 'हिन्दुस्थान' को अपने सम्पादकत्व में खूब चमकाया। किन्तु दुर्भाग्यवश एक दिन अचानक राजा साहब ने मदिरापान करते समय आवश्यक कार्यवश उन्हें बुला लिया। योरोपीय महिला से नया विवाह किया था उन्होंने। मालवीय जी कमरे में पहुँचे अवश्य किन्तु स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा—'आज शर्त टूट गई इसलिए आपके यहाँ का मेरा अन्न-जल उठ गया, कृपया पत्र के लिए दूसरी व्यवस्था करें। आपकी उदारता और स्नेहिल सहयोग मुझे सदा स्मरण रहेगा। मैं जा रहा हूँ।'

समझाने-बुझाने पर भी जब वे अपने निर्णय पर डटे रहे तो राजा साहब बोले—'जाना ही है तो अवश्य जाइए। वकालत पढ़ने में रुचि लो, सारी पढ़ाई का खर्च मैं वहन करूँगा।' 1889 में हिन्दुस्थान छोड़ दिया।

वकालत की पढ़ाई के साथ मालवीय जी 'सनातन धर्म', 'लीडर', 'मर्यादा', 'इंडियन ओपीनियन', 'एडवोकेट', 'अभ्युदय' आदि अनेक हिन्दी-अंग्रेजी पत्रों का सम्पादन एवं संचालन भी करते रहे। एल-एल० बी० की परीक्षा 1891 ई० में उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने वकालत प्रारम्भ कर दी। थोड़े ही समय में उनका नाम प्रयाग के सुविख्यात अग्रणी एडवोकेटों की श्रेणी में आ गया। सन् 1904 में 'हिन्दू विश्वविद्यालय' का स्वप्न उन्होंने अपनी आँखों में देखा।

हाईकोर्ट के वकील के रूप में उन्होंने काफी नाम और धन कमाया किन्तु लोक कल्याण और देशसेवा की करुण चीत्कारें उन्हें अपनी ओर बरबस आकर्षित किए जा रही थीं। इस प्रकार वकालत को तिलांजलि दे समाजसेवा के क्षेत्र में आ कूदे।

सन् 1914 में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा हरिद्वार में गंगा के प्रवाह रोक कर नहर निकालने के प्रयत्न से जनता भड़की। मालवीय जी ने तत्काल हिन्दुत्व की भावना का प्रतिनिधित्व करते हुए संयुक्त प्रांत (यू० पी०) के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर जेम्स से मिल कर अपना रोष प्रकट किया—'गंगा की पवित्रता का ध्यान रख जनता के असंतोष को दूर करना आवश्यक है। नहर का

पानी कम कर दिया गया तो किसानों को कष्ट होगा। पाँच फुट का फाटक काफी कम है। पाँच से दस लाख तीर्थ-यात्री बड़ी-बड़ी दूर से यहाँ आते हैं जिन्हें बड़ी असुविधा होती है। इसके लिए यदि अधिक धन व्यय भी हो तो जनता संतुष्ट होनी ही चाहिए। कोई हिन्दू अपनी आत्मा और धर्म के आदेशों से अपने आर्थिक लाभ को अधिक महत्त्व कभी नहीं देता है।' मालवीय जी की विजय हुई और गंगा की धारा अविच्छिन्न रखने का समुचित प्रबंध सरकार को करना पड़ा।

सन् 1906 की पहली जनवरी को काशी में 'हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना-संबंधी घोषणा करते हुए अपनी आवाज उन्होंने बुलंद की—'फकीर कौम के आए हैं, झोलियाँ भर दो।' जनता उनकी झोलियाँ 10 वर्ष तक निरंतर भरती रही और 4 फरवरी, 1916 में 1 करोड़ रुपए की लागत से बसंत पंचमी के दिन 'हिन्दू विश्वविद्यालय' का शिलान्यास किया गया। उन्होंने समर्पण की भावना से ही आजीवन कार्य किया जिसके कारण आशातीत सफलता उनके चरण निरंतर चूमती चली गई। वायसराय लार्ड हार्डिंग ने विश्वविद्यालय की नींव रखी।

'हिन्दू विश्वविद्यालय' के दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था—'**सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायात्मा प्रमदः। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।**'

कुछ क्षण रुक कर गंभीरता-भरे स्वर में उन्होंने आगे कहा—'हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना इसलिए की गई है कि यहाँ के छात्र विद्या अध्ययन करते हुए अपने धर्म और देश के सच्चे सेवक बनें। यहाँ सबके लिए द्वार खुले हैं। सच्चरित्रता, हमारे विश्वविद्यालय का मूल मंत्र है और यही हमारी शोभा है। डिग्रियाँ देने के लिए बहुत-से विश्वविद्यालय बने हुए हैं। हम प्रत्येक छात्र को शुद्ध, सात्त्विक, तेजस्वी और वीर बनाना चाहते हैं—जो ईश्वर में विश्वास करे, प्रत्येक प्राणी का आदर करे, वीरता के साथ अन्याय का विरोध करे और आत्मसम्मान और सच्चाई के मार्ग पर चल कर अपना, समाज और देश का कल्याण कर सके।'

वे नियमनिष्ठ, अनुशासनप्रिय, आस्थावान, कट्टर सनातनी और कर्मकाण्ड के प्रबल समर्थक थे जिन्होंने अपनी जाति के ब्राह्मणों के अतिरिक्त

किसी भी अन्य व्यक्ति के हाथ का बना भोजन आजीवन ग्रहण नहीं किया। सचमुच वे एक रूढ़िवादी हिन्दू अवश्य थे और समाज की प्राचीनतम परम्पराओं और धारणाओं की सीमाओं को लाँघना भी कभी नहीं चाहते थे किन्तु जब कहीं भी देशभक्ति का प्रश्न टकराया उन्होंने अपने कठोर नियमों को तोड़ने में कोताही नहीं बरती। अछूतोद्धार की समस्या से जूझते हुए उन्होंने सन् 1927 को महाशिवरात्रि के पावन पर्व के अवसर पर काशी दशाश्वमेध घाट पर चारों वर्णों के ब्राह्मणों से चांडाल तक को 'ओम् नमः शिवाय, ओम् नमो नारायणाय' आदि मंत्रों की मंत्र-दीक्षा दी। मालवीय जी ऐसे तपस्वी ब्राह्मण थे।

सन् 1898 में नागरी प्रचार के आंदोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए मुसलमान विरोधियों के दाँत उन्होंने तोड़ डाले।

नागरी प्रचारिणी के सबसे प्रबल और कट्टर विरोधी सर सैयद अहमद खाँ के पश्चात् उनके स्थान पर नियुक्त मोहसिनुलमुल्क ने भी उनका सदा भयंकर विरोध किया। लार्ड कर्जन सरकार भी उनकी समर्थक होने के कारण नागरी के विरोध की पक्षपाती रही। मालवीय जी ने जनमत संगठित कर नागरी के पक्ष में प्रमाण एवं आँकड़े प्रस्तुत कर नागरी लिपि के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किये, डेपुटेशन भेजे गए और अंत में उनके परिश्रम के फल-स्वरूप ही अदालत में नागरी लिपि में हिन्दी भाषा को स्थान प्राप्त हुआ। इस विजयश्री ने नागरी प्रचारिणी सभा को जन्म दिया और 1 मई, 1910 को एक बैठक में हिन्दी साहित्य सम्मेलन करने का निश्चय किया गया जो साहित्य की उन्नति के लिए अग्रसर हुई। उन्हें अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के जयपुर अधिवेशन के सुअवसर पर अध्यक्ष चुना गया।

वे देश की जनता को जोड़ने के लिए आजीवन ही लोकहित में सोचते रहे। देश की अखंडता के लिए सनातन धर्म सभा, भारत धर्म महामंडल, राष्ट्रीय दल, महावीर दल जैसी धार्मिक संस्थाओं की स्थापना कर हिन्दू समाज को संगठित रखने के लिए उन्होंने उनमें आत्मविश्वास और जागृति पैदा कराने का प्रयत्न किया।

वे भारतीय रहन-सहन, सादा-शाकाहारी खान-पान, हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल आचरण के लिए सदा ही लोगों को प्रोत्साहित

करते ।

स्त्री शिक्षा और उनकी उचित स्वतंत्रता के वे पक्षपाती थे । स्त्री और गोरक्षा के लिए उनके हृदय में बड़ा सम्मान था, पर्दा प्रथा के विरोधी किन्तु विधवा विवाह के समर्थक थे । बम्बई पुलिस ने जब महिलाओं पर अत्याचार किए उन्होंने दमन नीति के विरुद्ध अपनी अस्वस्थता की चिन्ता छोड़ कानून भंग कर सत्याग्रह करते हुए जेल चले गए । मौन रहकर जुल्म सहना वे कभी नहीं चाहते थे ।

वे देश की स्वतंत्रता के लिए कंधे से कंधा मिला कांग्रेस में काम करते रहे। अनेक आंदोलनों में सम्मिलित होकर कई बार जेल गए।

सन् 1919 के अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने मांट फोर्ड के सुधारों को स्वीकार करने की राय देकर गांधी जी के विरोधी हो गए। उस समय देश की जनता गांधी जी के साथ थी, दूसरी तरफ अकेले थे। सन् 1924 में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान श्री श्याम लाल गुप्त पार्षद के गीत ने जनसाधारण में बड़ा ही जोश एवं जागृति पैदा की। आजादी की लड़ाई में लिखा गया उनका झंडा गान सन् 1925 में सर्वप्रथम कानपुर कांग्रेस के अवसर पर सामूहिक रूप से गाया गया । इसके पश्चात् कांग्रेस के ध्वज गान के रूप में यही गीत प्रभात फेरियों, सत्याग्रह के दौरान ही नहीं स्कूल और शिक्षण संस्थाओं के मंच से भी सगर्व गाया जाता तब श्रोता मंत्रमुग्ध होकर नत-मस्तक हो नमन करते—ध्वज गान था—

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
सदा शक्ति बरसाने वाला,
वीरों को हर्षाने वाला,
शांति सुधा सरसाने वाला,
मातृभूमि का तन, मन सारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
लाल रंग भारत जननी का,
हरा अहले इस्लाम वलो का,
श्वेत सभी धर्मों का टीका,
एक हुआ रंग न्यारा-न्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
है चरखे का चित्र संवारा,

मानो चक्र सुदर्शन प्यारा,
हरे देश का संकट सारा,
है यह सच्चा भाव हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
इस चरखे के नीचे निर्भय,
होवे महाशक्ति का संचय,
बोलो भारत माता की जय,
सबल राष्ट्र है ध्येय हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
आओ प्यारे वीरो आओ,
राष्ट्र ध्वजा पर बलि-बलि जाओ,
एक साथ सब मिल कर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
शान न इसकी जाने पाए,
चाहे जान भले ही जाए,
बिश्व विजय करके दिखलाएँ,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।

दूसरी ओर इसके विपरीत इस्लामी कट्टरवाद और पृथकतावाद के पोषक गोरी सरकार के अनेक पिट्ठुओं द्वारा घृणा फैलाकर साम्प्रदायिकता की पौध उगाने में उस समय शायर इकबाल और मोहम्मद अली जिन्ना अग्रणी थे।

सन् 1922-23 में पंडित मदनमोहन मालवीय द्वारा महात्मा गांधी तथा खिलाफत के मुस्लिम नेताओं की अंग्रेजी हुकूमत से समझौता कराने का प्रयत्न करने पर शायर इकबाल ने समझा मालवीय जी 'सर' की उपाधि प्राप्त करने के लिए चिन्तित हैं तो उसने अपना व्यंग्यपूर्ण कलाम सभा मंचों में पढ़ना शुरू किया—

'कितनी खिदमत की है खल्के अल्लाह की,
देखिए कब होते हैं 'सर' मालवी,
मुस्लिम नादाँ को क्या मालूम है—
किस खुदा के हैं पयम्बर मालवी।'

लेकिन परिणाम उल्टा हुआ, शायर इकबाल सर मुहम्मद इकबाल हो

गए और मदन मोहन मालवीय जी केवल 'महामना' ही आजीवन रहे। लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव प्राप्त किया गया। इस समय अंग्रेजों की शह पर भारत के बुद्धिजीवी मुसलमान भी इस्लामी क्रान्ति तथा सम्पूर्ण धर्म परिवर्तन और आतंकवाद के माध्यम से पुनः इस्लामी राज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहे थे जिसके फलस्वरूप 1930 में मुस्लिम लीग ने इलाहाबाद अधिवेशन में पाकिस्तान की माँग पेश कर दी थी।

श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने विषैले प्रचार के लिए व्यंग्यपूर्ण उत्तर देते हुए लिखा—

'देख गतिविधि देश की, मैं मौन मन में रो रहा हूँ,
आज चिन्तित हो रहा हूँ।
बोलना जिनको न आता था, वही अब बोलते हैं,
रस नहीं, अब देश के उत्थान में, विष घोलते हैं,
सर्वदा गीदड़ रहे अब सिंह बनकर डोलते हैं,
कालिमा अपनी छिपाए, दूसरों की खोलते हैं,
देखकर उनका व्यतिक्रम, आज साहस खो रहा हूँ,
आज चिन्तित हो रहा हूँ।

जनता ने पं० मदनमोहन मालवीय सहित राष्ट्रीय कवि की रचना का रसास्वादन करते हुए अपनी करतल ध्वनि से शानदार स्वागत किया। मालवीय जी भ्रमपूर्ण एकपक्षीय एकता के समर्थक कभी नहीं रहे, न गिर कर वे समझौता करने के पक्षपाती थे। वे भेड़ के समान पीछे-पीछे चलने के कट्टर विरोधी थे। इसीलिए उन्होंने उचित सुधारों के लिए कांग्रेस में रहकर ही संघर्ष किया। कांग्रेस से मतभेद बढ़ते गए किन्तु गांधी जी से वे प्रभावित थे और अहिंसा के पूर्णतया समर्थक भी रहे।

इसी प्रकार ब्रिटेन के युवराज के आगमन पर कांग्रेस के योजनानुसार देश में हड़ताल कर स्थान-स्थान पर उन्हें काले झंडे दिखाए गए। लगभग 50 सहस्र राष्ट्रवासियों और गणमान्य नेताओं सहित लोगों ने विरोधस्वरूप गिरफ्तारियाँ दीं। परन्तु मालवीय जी ने दूसरी ओर इसे अनुचित समझते हुए स्वयं युवराज का सत्कार किया। मांट फोर्ड के सुधारों का बहिष्कार न

कर 9 वर्षों तक कांग्रेस में सम्मिलित रहते हुए कार्य किया और 1929 में आपने 'राष्ट्रीय पार्टी' की स्थापना कर कांग्रेस के विरोध में चुनाव भी लड़ा।

उन्होंने जहाँ ब्रिटेन के युवराज का देश में स्वागत किया वहीं साइमन कमीशन के भारत आगमन पर उन्होंने अपना विरोध प्रकट किया। 1930 ई० में जब पूर्ण स्वराज्य की माँग उठाकर कांग्रेस ने क्रान्तिकारी कदम उठाने का यत्न किया मालवीय जी ने मौन धारण कर तटस्थता का परिचय दिया। 1931 ई० में आप गांधी जी के साथ गोलमेज सभा में लन्दन गए और अपने भाषणों से लोगों को चकित कर दिया।

मालवीय जी स्वभाव से सरल, मृदु एवं सौम्य थे और केवल रचनात्मक प्रवृत्तियों में ही विश्वास करते थे और भारतीयता को स्वप्न में भी भुलाने के पक्षपाती न होने के कारण महात्मा गांधी के अधिक निकट थे अर्थात् पौराणिक-वैदिक संस्कृति और नई वैज्ञानिक प्रगति के सहज समन्वय के वे पक्षपाती रहे। उनका धर्म संकीर्ण नहीं था, गांधी जी बड़े गर्व से कहते—'मैं तो मालवीय जी महाराज का पुजारी हूँ।'

सन् 1910 में मालवीय जी राज्य सभा के सदस्य चुन लिए गए थे और निरन्तर 19 वर्षों तक आप उसी सभा के अंग रहे जिसमें सदा ही उन्होंने लोकपक्ष का समर्थन किया।

सरकार की नीति की तीव्र भर्त्सना उन्होंने अपने उग्र भाषणों में की जब पंजाब में भीषण हत्याकांड हुआ। डायर के अत्याचारी शासन के विरोध में पीड़ित पंजाब की उन्होंने अभूतपूर्व सेवा की।

महात्मा गांधी ने कहा था—'आज मालवीय जी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है! यौवनकाल से आज तक देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आ रहा है। मालवीय जी के काम बहुत हैं—बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा है हिन्दू विश्वविद्यालय। हिन्दू विश्वविद्यालय के मालवीय जी प्राण हैं और हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी के प्राण है।' मालवीय जी राष्ट्रीय महासभा के तीन बार अध्यक्ष भी चुने गए किन्तु बाद में उनकी धारणा मतभेद में बदल गई जब उन्होंने अनुभव किया अब राष्ट्रीय महासभा मुसलमानों को खुश करने के लिए

हिन्दुओं के प्रति अन्याय करने में कहीं भी नहीं चूकती। और इसी विश्वास के वशीभूत हो उन्होंने हिन्दू महासभा को जन्म दे डाला और तीन बार उसके अध्यक्ष चुने गए।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर उनका मतभेद गांधी जी से अवश्य बना रहा किन्तु संकट के समय आपसी भेदभाव त्याग कर वे आज्ञाकारी सिपाही से उनके झंडे तले भी आ जाते। जब मतभेद के बढ़ते भारतीय कांग्रेस गरम और नरम दो दलों में विभाजित हो गई तो मालवीय जी का समर्थन अधिकतर नरम दल के साथ रहा और अनेक मतभेदों के बावजूद उसे छोड़ना कभी श्रेयष्कर नहीं माना। अपना जीवन उन्होंने देशवासियों के कल्याण के लिए अर्पित कर दिया था। वे मानवता के सच्चे पुजारी थे। उन्हीं के उत्थान के लिए वे जी रहे थे।

जब देश में चौरा-चौरी कांड हुआ उन्होंने पुनः वकालत का चोगा पहन 151 भारतीय अभियुक्तों को अपने ओजस्वी तर्कों के माध्यम से फाँसी के फंदे से मुक्त करा लिया था।

वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के पूर्णरूपेण पक्षपाती थे क्योंकि मुसलमानों से भी वे प्रेम करते थे। साम्प्रदायिकता का भीषण उन्माद जब भी देश में उभरा अपने प्राणों को संकट में डाल कई बार मुसलमानी मुहल्लों में जाकर उन्होंने स्वयं भोजन बँटवाया, वस्त्र बँटवाए, आवश्यक सहायता प्रदान कराई।

उन्होंने सदा लोगों को विश्वास दिलाते हुए यही कहा---'मुझे अपने धर्म पर अटूट विश्वास है किन्तु पर-धर्म का अपमान करने की कल्पना मेरे मन में कदापि पनप ही नहीं सकती। मैं मानवता का पुजारी इस जीवन में मनुष्यता के सामने किसी भी जात-पाँत को मानता नहीं हूँ। यह ध्यान हर व्यक्ति को रखना चाहिए कि मन्दिर अथवा किसी मस्जिद को नष्ट-भ्रष्ट करने से किसी धर्म की श्रेष्ठता कभी भी नहीं बढ़ सकती। हिन्दू-मुस्लिम में सदैव एक-दूसरे के प्रति प्रेम बढ़े, हर व्यक्ति एक-दूसरे का आदर करे, मन में किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखते हुए जब तक जीना हम नहीं सीखेंगे तब तक दोनों में से किसी का भी कल्याण सम्भव नहीं है।'

सन् 1932 ई० में साम्प्रदायिक सद्‌भाव के लिए वे एकता सम्मेलन

र समझौता कराना चाहते थे। वे न्याय के पक्षपाती थे किन्तु दबाव कर अपनी या राष्ट्र की प्रतिष्ठा पर कभी आँच नहीं आने देना ते थे। अंग्रेजों की भेदनीति के कारण हिन्दू-मुसलमान एकता के ों पर पानी फिर गया।

एक दिन हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापकों, छात्रों और छात्राओं विशाल समूह में भाषण करते हुए एक संस्मरण सुनाया—'विदुला का संग्राम से मुँह मोड़ अपनी माता के निकट पहुँच कर कहता है—मैं युद्ध ना नहीं चाहता, असंख्य लोग लड़ाई में मारे जाएँगे इसलिए यदि मेरा राज्य जाता है तो जाने दो। मुझे ऐसी विजय की आकांक्षा नहीं है।

'विदुला ने क्रोधित हो गर्जना करते हुए पुत्र को ललकारा—मुझ जैसी त्राणी की कोख से उत्पन्न होकर संग्राम से भाग, मेरे दूध को लजा दिया ते! तुझे धिक्कार हे कायर ! यदि तू वास्तव में एक क्षत्रिय पुत्र है तो शीघ्र लौट जा और युद्ध कर जब तक तेरे शरीर में प्राण शेष हैं। यही श्रेयष्कर है—

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो
न च धूमायितं चिरम्।

अर्थात्, क्षण-भर के लिए भी भभक कर जलना अति उत्तम है और श्रेयष्कर है, किन्तु अधिक दिनों तक धीमे-धीमे धुएँ सहित सुलगते रहना कदापि अच्छा नहीं है।—माँ के कठोर वचनों को सुन विदुला का पथ-भ्रष्ट बेटा रण में लौट गया और विजय प्राप्त करने के पश्चात् ही माँ को अपना मुँह दिखाया।'

उन्होंने अपने भाषण को आगे बढ़ाते हुए कहा—'प्रिय विद्यार्थियो ! अर्जुन ने दो प्रतिज्ञाएँ की थीं—मैं कभी भी दीनता के साथ किसी के सामने नहीं गिड़गिड़ाऊँगा और न कभी पीठ दिखाकर रण से भागूँगा

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।'

'आप सभी को भी ऐसे ही जीवन जीने का संकल्प लेना चाहिए—कभी किसी के आगे न अपने सिर को झुकने दो और जो सम्मुख सिर उठाए उसे ललकार कर भगा दो। सत्य से, ब्रह्मचर्य से, व्यायाम से, विद्या से और देशभक्ति से सदा सम्मान पाने के लिए लालायित रहो।'

उन्होंने छात्रों को विद्या अध्ययन के साथ ही शारीरिक व्यायाम कर अपने को बलिष्ठ बनाने की प्रेरणा देते हुए कहा—'हर समय पढ़कर किताबी कीड़ा बन जाना भी खतरनाक है। जहाँ विद्या से बुद्धि का विकास किया जाना आवश्यक है वहीं साथ-ही-साथ शरीर की शक्ति पर भी ध्यान देना उतना ही अनिवार्य है। ऐसी बुद्धि का तुम क्या करोगे जब कोई आकर तुम्हें उठाकर पटक देगा। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी को एक दोहा कंठस्थ रखना चाहिए—

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
मन लगाई विद्या पढ़ो, पूरे हों सब काम।।'

देश और समाज को स्वावलम्बी बनाने के साथ देशी उद्योग-धन्धों के विकास के वे पूर्ण पक्षपाती थे। इसी कारण उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय में शिल्पकारी एवं इंजीनियरिंग विभाग भी साथ खुलवाने की व्यवस्था की थी।

1930 के स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने जगह-जगह धरना देकर लोगों को राष्ट्रीय एकता के लिए संगठित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए कहा था—'देश के नागरिक सभी भारतवासी हैं। चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई सबको ही राष्ट्र की एकता के लिए आपसी मतभेदों को ताक पर रख देना चाहिए, तभी देश, समाज और राष्ट्र के साथ व्यक्ति का भी कल्याण सम्भव है।'

1943 में जब बंगाल में भीषण अकाल में असंख्य नौनिहाल अबोध शिशुओं, लाखों नर-नारियों ने भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर अपना दम तोड़ दिया तब महामना मालवीय जी ने उन अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए रात-दिन एक कर दिया।

इस हृदयविदारक पीड़ा के घाव अभी भरे भी नहीं थे कि 1946 में बंगाल में बीभत्स नरमेध यज्ञ में असंख्य निर्दोष देशवासियों के खून से पिशाचों ने अपने हाथ रंग डाले। बलात्कार, हत्या, लूटपाट और पैशाचिक कुकृत्यों के कारण मानवता कलंकित हो उठी।

चारों ओर शिशुओं, अबलाओं, नगरवासियों की भीषण चीत्कारों और करुण क्रन्दनों से वायुमंडल गूँजने लगा। ऐसे अमानुषिक दृश्य और पीड़ितों

की करुण पुकारें सुन युगनिर्माता का सरल हृदय दर्पण के समान टूटकर बिखर गया था जैसे इस आघात को वे सहन न कर सके।...और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का वह भीष्म पितामह 12 नवम्बर, 1946 को पथ-भ्रष्ट भटकी मानवता को अपना बहुमूल्य मूक संदेश दे उस तपस्वी महा-मानव की अनश्वर आत्मा ने अपना शरीर त्याग दिया। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपनी काव्यांजलि अर्पित करते हुए उस महापुरुष के संदर्भ में लिखा—

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी,
पुण्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी,
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं, किन्तु कौन तुम-सा दानी ?
अक्षय शिक्षा सत्र तुम्हारा हे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी !
स्वयं मदन मोहन की तुममें, तन्मयता है समा गई,
कल्याणी वाणी जन-जन के हित में धूनी रमा गई।

अहिंसा के मसीहा महात्मा गांधी

[1869-1948 ई०]

महात्मा गांधी ने धर्म और राजनीति को एक ही सूत्र में संजो[कर] समस्त संसार के सम्मुख एक नया चमत्कार प्रस्तुत किया जिनका जी[वन] दर्शन युग-युगान्तर तक राष्ट्रीय एकता के प्रणेता के रूप में स्मरणीय [व] अनुकरणीय रहेगा। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा—'हम जानते हैं धर्म अ[नेक] हैं किन्तु सभी ईश्वरदत्त हैं, इसलिए हमें धर्मों के प्रति समभाव रख[ना] चाहिए। इससे अपने धर्म के प्रति उदासीनता नहीं आती, बल्कि स्वध[र्म] विषयक प्रेम अंधा न होकर ज्ञानमय हो अधिक सात्त्विक और निर्मल ब[न] जाता है। ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट जाता है।'

'सब धर्मों के प्रति समभाव से हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते हैं जिस[के] विकास से हम अपने धर्म को अधिक पहचान सकते हैं। धर्म का मूल ए[क] है किन्तु धर्म अनेक हैं जिस प्रकार आत्मा एक है लेकिन मनुष्य दे[ह] अगणित हैं, जैसे वृक्ष—जिसके पत्ते असंख्य हैं। समभाव से हम अपने दोषों का अवलोकन कर अन्य धर्मों के ग्राह्य अंश अपने धर्म में निस्संकोच ले सकते हैं—ऐसा करना धर्म हो जाएगा।'

'वास्तविक अहिंसा यदि है तो हम बैर-भाव से भी मुक्त हो जाते हैं। अधर्म देखते हुए भी, अधर्मी आचरण करने वाले के प्रति मन में प्रेम-भाव ही होगा। इसमें अधर्मी या तो हमारी दृष्टि स्वीकार करेगा अथवा हमार[ी] भूल हमें दिखाएगा, सम्भव है दोनों परस्पर एक-दूसरे के मतभेद सहन करेंगे। पर विपक्षी यदि हिंसक हुआ तो वह कठोरता से काम लेगा। यदि

म अहिंसा के पुजारी हैं तो हमारी मृदुता उसकी कठोरता निश्चय दूर रके रहेगी। दूसरों को भूल से भी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए, खुद ही ारे कष्टों को सहना है—ऐसे स्वर्णिम नियम का पालनकर्त्ता सभा ंकटों से दूर रहेगा।'

उन्होंने अन्याय और असत्य से संघर्ष करने के लिए अहिंसा के ऐसे अमोघ अस्त्र का आविष्कार किया जिसने भारत माँ के पैरों में पड़ी परतंत्रता की बेड़ियों को काटकर बंधनमुक्त करा दिया। देश की अखण्डता, हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं सर्वधर्म-समन्वय हेतु हँसते-हंसते अपने जीवन की आहुति देने वाले महात्मा गांधी का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है, अमर है—जिसे विश्व कदापि भुला नहीं सकेगा।

मोहनदास करमचंद गांधी (महात्मा गांधी) का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को गुजरात स्थित काठियावाड की एक रियासत पोरबंदर नगर के एक दीवान के घर में हुआ था। माँ का नाम था पुतलीबाई जो करमचंद गांधी की चौथी पत्नी थीं। एक धर्मपरायण नारी होने के नाते माँ की आस्था उपवास और व्रत पालन में अधिक थी। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही बालक मोहनदास का विवाह कस्तूरबा से हो गया जो आगे चल कर बापू की प्रेरणा शक्ति के रूप में 'बा' के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। गांधी जी के पिता बड़े ही सत्संगप्रेमी थे जिसके फलस्वरूप बचपन से ही उनके साथ रहकर चर्चाओं में भाग लेते हुए मन में यह बात जड़ पकड़ गई कि सब धर्मों का मूल सचाई की पूजा है। आठ वर्ष की आयु में एक देहाती स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा शुरू हुई। सन् 1887 में गांधी ने मैट्रिक परीक्षा एक साधारण स्तर के छात्र के रूप में राजकोट से उत्तीर्ण कर विशेष अध्ययन के लिए भावनगर के श्यामलदास कालेज में प्रवेश लिया।

पिता की मृत्यु 1885 में हो ही जाने के कारण उनमें मित्र की सलाह पर विदेश जाकर बैरिस्टरी करने की इच्छा बलवती हुई किन्तु इंग्लैंड जाने से पूर्व अपनी धर्मावलम्बी माता के सामने प्रण लिया कि वे विदेश में मांस-मदिरा और परस्त्री संग से दूर रहेंगे। 4 सितम्बर, 1888 को वे लंदन के लिए रवाना हो गए। जिस जहाज पर वे विदेश रवाना हुए मात्र एक भारतीय जूनागढ़ के श्री त्र्यम्बकराय मजुमदार वकील को छोड़ सभी

यात्री अंग्रेज थे। मजुमदार ने सभी से मेल-जोल बढ़ा लिया किन्तु गांधी जी अंग्रेजी बोलने का अभ्यास न होने के कारण किसी से मेल-जोल बढ़ाने में कतराते रहे।

विलायत में गांधी जी ने, विलायती शिष्टाचार रीति-रिवाज की जानकारी के लिए प्राणजीवन मेहता के मित्र के पास रहकर अंग्रेजी वार्ता की आदत डालने की चेष्टा की क्योंकि कुछ दिन सभ्य बनने की धुन में उन्होंने सूट सिलवाया, अपने भाई से असली सोने की चेन मंगवाई। आइने के सामने प्रतिदिन दस मिनट सिर के बालों में माँग निकाल पट्टियाँ काढ़ते, काफी टीप-टाप करने पर भी स्वप्न अधूरा रह जाता जब उन्हें अनुभव होता कि नाच-गाना और फ्रेंच भाषा ज्ञान भी सभ्यता की कुंजी में आवश्यक है। धीमे-धीमे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्हें आभास हुआ कि बनावटी सभ्यता के लिए अपनी औकात से अधिक खर्च करना मूर्खता है, पाप है—इसलिए सादा जीवन ही यहाँ के वातावरण के अनुकूल रहेगा। लंदन प्रवास में उन्होंने आस्तिक वैष्णव परिवार की मान्यताओं का पालन करते हुए स्वयं शाकाहारी भोजन बनाते, मांस-मदिरा आदि के व्यसनों एवं कुसंगों से दूर रहकर गीता, बाइबिल, बुद्धचरित तथा टालस्टाय एवं थियोसोफी के साहित्य का गहन अध्ययन में विशेष रुचि लेते। अचानक इसी बीच में माँ स्वर्ग सिधार गईं।

10 जून, सन् 1891 को लंदन से बैरिस्टरी उत्तीर्ण कर भारत लौट आये और बम्बई में अपनी वकालत शुरू कर दी। एक दिन कचहरी में एक केस की पैरवी करते हुए अदालत के कोलाहलपूर्ण वातावरण से घबरा कर सिर चकराने लगा। उन्हें आभास हुआ कि कुशल वक्ता न होने के कारण यह व्यवसाय उपयुक्त नहीं। उनका हृदय वाचालता और छल से कोसों दूर था क्योंकि सरलता और उदारता उन्हें पैतृक सम्पदा के रूप में बचपन से प्राप्त हुई थी। वकालत छोड़ वे राजकोट वापस आ गये।

एक रात उन्होंने विद्यार्थी जीवन की एक घटना स्वप्न में देखी—'स्कूल में इंस्पेक्टर निरीक्षण हेतु पधारे। अपनी कक्षा में केवल पाँच अक्षरों

के तौर पर अंग्रेजी में श्रुतलेख 'कैटल' लिखना कठिन लगा। शिक्षक ने संकेत किया वे निकट के छात्र की नकल मार लें। उन्होंने आदेश मानने से इंकार कर दिया''' और नींद खुल गई। वे सोचते रहे, ठीक ही किया, मिथ्या आचरण पाप है। सत्य ही सर्वोपरि है, सत्य परमेश्वर है। जब सत्य परमेश्वर है फिर धर्म में असत्य का स्थान नहीं हो सकता। असत्य, असत् का अर्थ हुआ 'नहीं'। 'सत्' सत्य अर्थात् 'है'। भला इसका नाश कैसे सम्भव हो सकता है? क्योंकि सत्य ही सम्पूर्णता है और सत्य ही सत्य का शेष भी।'

दादा अब्दुल्ला का दक्षिण अफ्रीका में बड़ा अच्छा कारोबार था जिन्होंने पैरवी के लिए गांधी जी को आमंत्रण दिया। मई 1893 को जब वे अफ्रीका में पहुंचे तो 24 वर्षीय गांधी ने वहाँ भारतीयों को अत्यन्त ही तिरस्कृत जीवन जीते पाया। सभी भारतीय वहाँ 'कुली' के नाम से सम्बोधित किए जाते। डरबन की एक अदालत में अपनी पगड़ी पहन मुकदमे की पैरवी के लिए वे घुसे। एक 'कुली बैरिस्टर' के व्यवहार से गोरा जज आग बबूला हो गया। उसने आदेश दिया—'अदालत में पगड़ी उतार कर आओ।' गांधी अपमानित मुद्रा में अदालत से बाहर आ गये किन्तु पगड़ी नहीं उतारी। पगड़ी के संदर्भ में वहाँ के अखबारों में काफी लेख प्रकाशित हुए। 'कुली बैरिस्टर' में लोगों ने काफी दिलचस्पी ली। किसी ने उनका विरोध किया और कुछ ने पक्ष लिया। गांधी जी की पगड़ी सिर पर कायम रही, उतरी नहीं।

गांधी जी दृढ़ता से डटे रहे, घबराये नहीं। उनका विचार था कि जो व्यक्ति अपनी बुद्धि, विवेक और दिमाग से काम नहीं लेता वह एक साधारण लकड़ी के समान जल में बहता ही रहता है, नीति समझने योग्य वह नहीं है।

'नीति के अटूट और अचल नियम हैं। सदा मत बदला करते हैं, नीति नहीं बदलती। हमारी आँखें प्रकाश में खुली हों तो सभी कुछ स्पष्ट सूझता है किन्तु नेत्र मूंदने पर दृश्य दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका मतलब यह कि हमारी आँखों का दृष्टिदोष हुआ, वास्तव में सूर्य के प्रकाश का कोई दोष नहीं है।'

'सत्य परमेश्वर के समान श्रेष्ठ, हितकर, कल्याणकारी है और इसी से मानव जाति का कल्याण एवं उत्थान सम्भव है।'

'हमारे पास जो है यदि भगवान को अर्पित कर दें तभी उसमें से आवश्यकतानुसार अपने लिए प्राप्त करने में कोई हानि नहीं। परमात्मा से साक्षात्कार करना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए।'

'विरोधियों की त्रुटियों को रजकण और उनकी भलाइयों को पर्वत के समान आंक कर चलने में दया और प्रेम उदित होता है। जब विरोधी के प्रति मित्रभाव ही प्रेम है तो उसकी त्रुटियाँ निकालने का प्रदर्शन न्याय-संगत नहीं है।' डरबन के अनेक अंग्रेज उनके मित्र बनते चले गए क्योंकि विरोध करने का ढंग उनका निराला था।

कुछ समय बाद सेठ अब्दुल्ला के मुकदमें की पैरवी करने प्रिटोरिया शहर गये। एक स्टेशन पर उनके डिब्बे में एक अंग्रेज सवार हुआ। उसने एक भारतीय को साथ सफर करते देख अगले स्टेशन पर अन्य डब्बे में जाकर स्थान बदलने पर विवश किया। उन्होंने विरोध में अपनी प्रथम श्रेणी की रेल टिकट दिखाकर कहा, 'मैं ट्रेन के सही डिब्बे में सफर कर रहा हूँ, इसे नहीं छोड़ सकता।' रेल वे पुलिस और कर्मचारियों ने अंग्रेज का पक्ष ले उन्हें डिब्बे से धक्का मार बाहर फेंक दिया, सामान उतार दिया, गांधीजी ने तमाम रात प्रतीक्षालय में सर्दी की कम्पन एवं ठिठुरन में काट दी। रेलवे के जनरल मैनेजर को तार से सूचित कर सवेरा होते ही दूसरी गाड़ी पकड़ सफर के आखिरी रेलवे स्टेशन चार्ल्स टाउन पर उतर घोड़ागाड़ी पकड़ी। घोड़ागाड़ी का टिकट ले जब उसमें प्रवेश करने लगे तो गाड़ी के लीडर (गोरे कंडक्टर) ने उन्हें कोचवान के पास बैठा कर स्वयं उनकी सीट पर बैठ गया। सिगरेट पीने की तलब लगने पर वह उनके निकट पहुँचा और बोला, 'मुझे अपनी सीट पर बैठने दो। तुम मेरे पैरों के पास बैठकर सफर करो।'

गांधी क्रोधित मुद्रा में बिफर गये—'मेरी जगह गाड़ी के भीतर सफर करने की थी, तुमने उस पर बैठकर मुझे कोचवान के निकट बाहर बैठा दिया। अब अपने पैरों में बैठाकर सफर कराना चाहते हो, मैं यहाँ से नहीं हटूँगा।' गोरे कंडक्टर ने गांधी जी की मन भरकर पिटाई की। प्रिटोरिया

में उन्हें होटल में ठहरने का स्थान पाना दुर्लभ हो गया, फुटपाथ पर चलते तो गोरे संतरी सड़क पर ही लात-घूंसों से प्रहार करने में न चूकते।

अप्रैल 1893 में एक बड़े व्यापारी सेठ अब्दुल करीम जवेरी के साथ जंजीबार पैरवी में गए तो काले-गोरों के भेदभाव, तिरस्कार और अत्याचार को देख उनके हृदय में विद्रोह की चिनगारियाँ भड़कने लगीं।

अफ्रीका को समुन्नत करने का श्रेय भारतीयों को ही था जो भारत सरकार के प्रोत्साहन पर मजदूर बनकर दक्षिण अफ्रीकन रिपब्लिक जा बसे थे। वहाँ कानून बना कि एशिया का कोई व्यक्ति व्यापार नहीं कर सकता। ब्रिटिश एजेण्ट ने आदेश दिया कि भारतीय को व्यापार अनुमति प्राप्त करने के लिए सरकार को फीस जमा करनी होगी। गांधी जी के दिमाग में सर्वप्रथम 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' की कल्पना ने साकार रूप लिया। उन्होंने 22 मई, 1894 को नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना कर डाली। 2 वर्ष तक भारतीयों को एकत्रित कर संघर्ष करते रहे और 1896 में वापस भारत लौट आये।

उन्होंने देश में श्री रानाडे, सर फिरोजशाह मेहता, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रामकृष्ण भांडारकर और जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी से सम्पर्क स्थापित कर अपने अनुभवों की जानकारी दे पुन: अफ्रीका को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने का निश्चय कर डाला।

6 माह के उपरान्त 800 भारतीयों को लेकर अफ्रीका में जब उन्होंने प्रवेश करना चाहा तो 23 दिन तक भारतीयों को जहाज से उतरने नहीं दिया गया। सरकार से जब अनुमति मिल गई तो गोरे लोगों ने उन पर सड़े अंडे फेंके, उनकी पगड़ियाँ उतार कर उछाली गयीं, सड़कों पर मार-पीट की गई। पुलिस अफसर की दयालु पत्नी ने वहाँ उनकी जीवन रक्षा की। वहाँ धमकी दी गई थी—'भारत लौट जाओ अन्यथा समुद्र में डुबो देंगे।'

उन्होंने फिर भी यही प्रचारित किया—'निन्दक बुद्धि धर्म में प्राय: दोष ही देख पाती है। सत्य साधक ही वह है जो प्रत्येक धर्म से सत्य के अंश को लेकर स्वयं ग्रहण कर ले और अनावश्यक अंशों को त्याग दे।'

'भारी से भारी वस्तु भी पंख के समान हल्की हो जाती है जब प्रेम से उसे उठाया जाता है। प्रेम का शुद्ध-व्यापक स्वरूप ही अहिंसा है। अहिंसा रागद्वेष से परे होने के फलस्वरूप सच्चे और शुद्ध प्रेम की जननी है।'

उन्होंने बलपूर्वक कहा—'उपासना बुद्धि का विषय नहीं है। उपासना करने के पश्चात् व्यक्ति का मन निश्चय ही शुद्ध हो जाता है। उपासना को श्रद्धा का विषय मानकर नित्य उपासना करनी चाहिए। जैसे शरीर का अन्न आदि आवश्यक पोषण करता है उसी प्रकार उपासना आत्मा की रक्षा करती हुई उसका पोषण भी करती है।'

प्रवासी भारतीयों के सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने फिनिक्स नामक स्थान पर 1904 में एक आश्रम की स्थापना कर 'इंडियन ओपीनियन' नामक पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया।

सत्य के वे सच्चे पुजारी थे। एक दिन एक अपराधी ने अपनी केस फाइल उन्हें सौंपते हुए मुकदमे की पैरवी करानी चाही। पूरी फाइल की छानबीन कर अपराधी से उन्होंने कहा—'वास्तव में खून तुमने ही किया लगता है और मैं किसी खूनी की पैरवी करने के लिए अदालत में नहीं जा सकता।'

अपराधी ने विनयपूर्वक कहा—'सचमुच, मैं अपराधी तो हूँ ही, इसीलिए आपको मैं एक हजार पौंड देना चाहता हूँ।' तत्काल उन्होंने गम्भीरता से उत्तर दिया—'मैं पैसों के लिए वकालत नहीं करता।'

वह अपराधी दूसरे वकील की पैरवी द्वारा फाँसी के फंदे से बचने पर गांधी जी से सम्पर्क कर बोला—'आप भ्रमित थे आप ही परमेश्वर हैं बगैर आपके सहयोग के मैं दोषमुक्त हो गया।'

गांधी जी ने उत्तर दिया—'अपने पैसे के बल पर सच्चाई और ईमानदारी का खून किया है, सिद्धांत का तूने एक तरह से गला घोंट दिया।'

'सिद्धांत की रक्षा के लिए, नीति मार्ग पर आगे कदम बढ़ाने के लिए अपने प्रियजनों की अप्रसन्नता भी सहन करने की क्षमता और साहस मनुष्य में अवश्य होना चाहिए।'

'आत्म-शुद्धि की पहली सीढ़ी अपनी अशुद्धियों को स्वतः स्वीकारना होता है क्योंकि आत्मवंचना में दम्भ से भी अधिक खतरा छुपा होता है।

मनुष्य अपना शत्रु और उद्धारक स्वयं है इसलिए यह आवश्यक है कि वह हर कदम सोच-समझ कर ही उठाए।'

इसी प्रवास काल में गांधी जी श्री रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' पुस्तक से इतने प्रभावित हुए कि उसका 'सर्वोदय' नाम से अनुवाद कर डाला। जोहांसबर्ग में 1904 में जब प्लेग फैली तो गांधी जी लोगों को उस भयंकर महामारी से बचाने के लिए दिन-रात सेवा-सुश्रूषा में निरंतर जुटे रहे। इसी प्रकार 1906 ई० के जुलू विद्रोह के अवसर पर घायलों की सेवा में अग्रसर हुए और इसी वर्ष ब्रह्मचर्य के पालन करने का कठोर व्रत भी ले लिया। जब ट्रांसवाल सरकार द्वारा प्रवासी भारतीयों पर अपमान-जनक काले कानूनों का शिकंजा कसा जाने लगा तो 6 नवम्बर, 1913 को उन्होंने जनता और शासकों के बीच अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा अपने अचूक अस्त्र का सफल प्रयोग किया।

उन्होंने प्रवासी भारतीयों में अपनी विचारधारा को प्रकट करते हुए उन्हें ललकारते हुए ट्रांसवाल की सरहद की ओर बढ़ ओजस्वी वाणी में कहा—'जहाँ हिंसा और कायरता में से कभी एक का चुनाव करना पड़ जाए तो ऐसे समय हिंसा को चुनना ही श्रेयष्कर होगा—चूँकि कायरता से तो हिंसा को चुनना ही बेहतर है।'

इस आंदोलन में गांधी जी पहली बार 2 माह के लिए जेल गए। जनता के आक्रोश से सरकार झुकी और बाध्य होकर समझौता करना पड़ा। यहीं से 'पैसिव रेसिस्टैंस' अर्थात् 'सत्याग्रह' शब्द का जन्म हुआ जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सुदर्शन चक्र की भाँति शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए।

सन् 1914 में वे इंग्लैंड भी गए जहाँ उन्होंने भारतीय स्वयं सेवक दल संगठित कर स्थापना की। उन्होंने नवयुवकों से कहा—'भाषणों और भाषण करने वालों से जहाँ तक सम्भव हो बच कर ही रहना चाहिए। न मिथ्या बातें कहें और न कभी अपनी बातें बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने की आदत ही डालें। मिथ्या कथन और बढ़ा-चढ़ा कर बातें करने से बनी-बनाई बात्तों के भंग हो जाने का खतरा बना रहता है।'

उन्होंने कहा—'वह देशभक्ति किस काम की है जो दूसरे राष्ट्रों को

संकट में डाल कर मात्र बड़प्पन प्राप्त करने के लिए लालायित रहती है।'

गांधी जी की निर्भयता, प्रखरता, तेजस्विता और निष्ठा ने लोगों के मन को जीत लिया। वे जन-जागृति के प्रबलतम प्रेरणा स्रोत बन कर उभरे।

उन्होंने जनता को अहिंसा का पाठ पढ़ाकर अपने आचरणों को सुधारने के लिए चरित्र निर्माण पर बल देते हुए आंदोलन की भूमिका भली भाँति समझा कर कहा—'अहिंसा को आचरण का स्थूल नियम नहीं समझना चाहिए। अहिंसा केवल मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति से द्वेष की गंध नहीं उठती वही अहिंसा है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा दो अलग-अलग भेद नहीं हैं किन्तु सत्य साध्य और अहिंसा साधन है।'

'नम्रता अहिंसा का ही एक गुण है जो अभ्यास से प्राप्त करने योग्य नहीं है। यह अनेक सद्गुणों और विचारमय जीवन जीने के फलस्वरूप स्वभाव से स्वयं प्रकट होती है। नम्र मनुष्य को अपनी नम्रता का भान कभी नहीं होता। अपनी मर्यादाओं में रहते हुए आचरण करने से मनुष्य में नम्रता के लक्षण नजर आने लगते हैं।'

'मनुष्य का विश्वास करना हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि हम दूसरों से इसी विश्वास की आशा रखते हैं। सेवा करने वाले कभी मर्यादा, सम्मान प्राप्त करने के आकांक्षी नहीं होते वे सदैव अपना सर्वस्व न्यौछावर कर जन सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं। इसलिए जीवन में धीरज रखो, विश्वास करो और निराशा को कभी अपने निकट नहीं आने दो।'

जब वे 1915 में अफ्रीका से भारत लौट आए तो यहीं की राज-नीति से सक्रिय रूप से जुड़ गए। वे सत्य-अहिंसा के अतिरिक्त किसी और राह के माध्यम से स्वाधीनता प्राप्त करने के कट्टर विरोधी थे। अनुयायियों की कतार बढ़ती गई। उन्होंने चम्पारन के किसानों को गोरी सरकार के अत्याचारों से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया जो उन्हें अपनी जमीन के 3/20 भाग में नील बोने को बाध्य करते थे। अन्याय के विरुद्ध जो भी कदम उन्होंने उठाया उस नीति पर डट कर संघर्ष किया। वे सदा कहते—

'अज्ञान दशा में नीति को हम भले ही न समझ पाएँ किन्तु ज्ञान-चक्षुओं के खुलने के उपरांत सभी कुछ स्पष्ट समझ में आने लगता है। जब भी

मनुष्य स्वार्थ की दृष्टि से देखना प्रारम्भ करेगा तब वह अनीति को भी नीति कहने का साहस करने लगता है। जैसे भयानक बवंडर अंत में उड़ जाता है अनीतिमान पुरुष भी नष्ट हो जाता है। शरीरबल और बुद्धिबल से भी बड़ा नीतिबल है।'

उन दिनों निलहे साहब नाम से प्रसिद्ध नील बागान के गोरे जमींदारों के अत्याचारों से बिहार का चम्पारन जिला पीड़ित था। गांधी जी सन् 1917 में वहाँ जाँच के लिए पहुँचे तो उन्हें सरकारी नोटिस से चम्पारन से बाहर निकल जाने का आदेश दिया गया। आदेश न मानते हुए मुकदमे में उन्होंने स्वीकार कर लिया कि जानबूझ कर सरकारी हुक्मअदूली उन्होंने की। मिल मालिकों के अत्याचारों से पीड़ित मजदूरों और अकाल पीड़ितों के लिए उन्होंने सत्याग्रह की शरण ली। उन्होंने सरकार से माँग की कि हरिजनों को नीच और अछूत न माना जाए और उन्हें भी समाज में बराबरी का दर्जा दिया जाए। सरकार को उनकी शिकायतों पर ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ा क्योंकि जनता उनके साथ थी। इन्हीं दिनों कविवर श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शांतिनिकेतन के आश्रमवासियों के नाम एक पत्र में गांधी जी के लिए 'महात्मा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया और उसके बाद वे गांधी के साथ महात्मा हो गए।

25 मई, 1915 को अहमदाबाद शहर से 10 किलोमीटर दूर साँपों से भरे एक वीरान जंगल में साबरमती नदी के तट पर गांधी जी ने 36 एकड़ जमीन साफ करवा एक आश्रम की नींव डाली। सर्वप्रथम इस आश्रम का नाम था 'सत्याग्रह आश्रम', दूसरी बार नाम बदला 'हरिजन आश्रम' और अंत में इसे 'साबरमती आश्रम' के नाम से पुकारा जाने लगा। गांधी जी अपनी पत्नी कस्तूरबा सहित इसी आश्रम में रहते। उसके आवास-गृह का नाम हृदय-कुंज था। यहाँ आम और इमली के घने वृक्षों की छाँव तले अनेक छोटी-छोटी कुटियाँ थीं जिनमें विनोबा कुटीर और मीरा कुटीर के नाम उल्लेखनीय हैं। पहली में गांधी जी के विचारों से प्रभावित विनोबा जी रहते और दूसरी कुटिया में निवास करतीं एक अंग्रेज महिला कुमारी मेडेलीन स्लेड जो 1925 से 1933 तक इसी आश्रम में रहीं। गांधी जी ने उन्हें मीरा सम्बोधित किया और इस प्रकार उस कुटीर का नाम ही मीरा

कुटीर पड़ गया। इसी साबरमती आश्रम में अपने राजनैतिक संघर्षमय जीवन के 12 वर्ष—1918 से 1930 तक—ऐसे व्यतीत किए कि मोहनदास करमचन्द गांधी महात्मा गांधी बन गए।

विदेशी माल का बहिष्कार कर घर-घर खादी वस्त्र उद्योग पहुँचाने के लिए आश्रम में उद्योग मंदिर स्थापित किया और 1920 का पहला सत्याग्रह आंदोलन का संचालन भी उन्होंने साबरमती आश्रम से ही किया। एक दिन श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले ने गांधी जी से कहा—'महाराष्ट्र में उनके विरुद्ध आक्रोश व्याप्त है, ऐसे विषाक्त वातावरण को दूर करने के उपाय सोचने आवश्यक हैं।'

उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'निन्दा करने वालों की निन्दा से न मैं घटूँगा और न प्रशंसा करने वालों की प्रशंसा मुझे बढ़ाएगी। न तिलभर छोटा हूँ और न तिलभर बड़ा। जैसा भी हूँ उस सृजनहार ने बनाया है—ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। अपने सृजनहार के सम्मुख यदि व्यक्ति सच्चा रहे तो किसी से उसे खटका ही नहीं रहेगा।'

प्रथम महायुद्ध में भारत ने अंग्रेजों की माँग पर सहायता की थी किन्तु भारतीयों को कुचलने के लिए 1919 में रोलेट एक्ट कानून बना। विरोधस्वरूप गांधी जी ने आंदोलन छेड़ कर मजदूर-किसानों की उन्नति के लिए, खादी का प्रचार कर घर-घर चरखा चलाने का उपदेश दिया और खुद भी प्रतिदिन चरखा कातते। यही चरखा आजादी की लड़ाई का निशान बन गया।

इसी वर्ष इस काले कानून के साथ ही 13 अप्रैल को बैसाखी पर्व के अवसर पर निहत्थी भीड़ पर पंजाब के जलियाँवाला बाग की नृशंस-अमानुषिक गोलीकांड तथा खिलाफत आन्दोलन के कारण गांधी ने राष्ट्रीय कार्यवाही की योजना बना पूँजीपतियों, मजदूरों, कृषकों, कार्यालय कर्मचारियों, महिलाओं, छात्रों, वकीलों, डाक्टरों और देश के बुद्धिजीवियों को एक सूत्र में संगठित करने के लिए 1919-20 में अहिंसक असहयोग आन्दोलन की घोषणा कर दी। उनके प्रमुख उद्देश्य थे—1. सरकारी पदवियों एवं मान का त्याग, 2. सरकारी-गैर सरकारी समारोहों का बहिष्कार, 3. सरकारी-अर्ध सरकारी स्कूलों से छात्रों को हटा राष्ट्रीय

कालेजों में शिक्षण व्यवस्था की जाए। 4. ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार कर स्वयं अपने झगड़े निबटाये जायें। 5. विदेशी माल का बाजारों में बहिष्कार करें। 6. मैसोपोटामिया में फौजी कार्य के लिए क्लर्क और मजदूर के रूप में भर्ती न हो। 7. कौंसिल चुनाव में उम्मीदवार नाम वापस लें, न बैठने वालों को मतदाता अपना मत न डालें आदि। अली बन्धुओं के साथ सारे देश में जनमत तैयार करने वे निकल पड़े।

1 सितम्बर, 1920 को कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में उन्होंने घोषणा की कि उनके कार्यक्रमों के अनुसार 1 वर्ष में स्वराज की प्राप्ति सम्भव है। सन् 1921 में वे आन्दोलन के डिक्टेटर बने और अहमदाबाद से बारदोली सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया किन्तु चौरी-चौरा स्थान पर हिंसात्मक घटना अचानक घटने से उन्होंने दुखित हृदय से आन्दोलन स्थगित कर दिया।

10 मार्च, 1922 को उनके नव प्रकाशित 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में प्रकाशित लेखों को राजद्रोहात्मक करार दे उन्हें 6 वर्ष का कारावास सुना यरवदा जेल में बंदी रखा गया। 2 वर्ष के बाद अचानक उनका स्वास्थ्य बिगड़ने पर सरकार ने जेल से रिहा कर दिया। 1924 को बेलगाँव के कांग्रेस अधिवेशन की उन्होंने अध्यक्षता की जिसमें सन् 1923 में निर्मित स्वराज्य पार्टी और बापू के अनुयायिओं को अपनी इच्छानुसार काम करने की अनुमति सहर्ष प्रदान कर दी जिससे स्वतन्त्रता संघर्ष जुझारू ढंग से चल सके।

इस समय देश के मुसलमान खिलाफत आन्दोलन के कारण गोरी सरकार से नाराज थे। उनके द्वारा समर्थित मोर्चे में गांधी ने कहा—'सत्य पर आग्रह करना ही सत्याग्रह कहलाता है। सत्याग्रही स्वयं कष्ट उठाने का यत्न करता है, विरोधी को कष्ट पहुँचाने की उसके मन में इच्छा नहीं होती। सत्याग्रही असत्य को सत्य मानकर बैठ जाने वाले लोग वास्तव में दुराग्रही होते हैं।' अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों में फूट के बीज बो दिए थे।

'जैसे धर्मरहित अर्थ त्याज्य है उसी प्रकार धर्मरहित राज्य सत्ता भी राक्षसी होती है।'

'सरकार एवं शासन का क्षेत्र जितना छोटा है, उतना ही विस्तृत और बड़ा सेवा का क्षेत्र होता है। साहित्य साध्य नहीं है लेकिन सेवा साध्य है।'

'जो व्यक्ति ब्रह्म में लीन हो सेवापरायण होने के इच्छुक हों वे संसारी सुख के पीछे कभी भी नहीं दौड़ेंगे। शास्त्र के नाम पर जो चलता है, सभी को शास्त्र मान लेना अनुचित है क्योंकि काल के अनुसार नीति परिवर्तन-शील है।'

'जब जीवन है, शरीर को उसका हक मिलना ही चाहिए—यही हमारे लिए ईश्वर की दी गई धरोहर है।'

उन्होंने चौरी-चौरा हत्याकांड में न कोई गवाह प्रस्तुत किया और न अदालत में कोई वकील। जज से निर्भय होकर उन्होंने कहा—'वे राज-भक्त होते हुए भी राजद्रोही बन गये हैं अतः उन्हें कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाये।'

गांधी जी ने अपने अनुयायिओं से कहा—'चरित्रहीन प्रवीण शिक्षक से विद्या अर्जित करने से बेहतर है, छात्र चरित्रवान परन्तु कम प्रवीण शिक्षक की शिष्यता स्वीकार कर थोड़ी विद्या अर्जित करने में ही संतोष कर लें।'

'त्याग के लिए त्याग करना कठिन है, किन्तु सेवा के लिए त्याग करना सरल है क्योंकि त्याग आत्मसुधार की सीढ़ी है। आत्मसुधार प्रफुल्लतादायिनी है। जो व्यक्ति ईश्वर के न्याय पर शंकित रहते हैं उनका शंकालु हृदय जीवन में कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकेगा।'

'भला काम करने के उपरान्त गर्व से हमें फूल नहीं जाना चाहिए। सदा अधिक-से-अधिक भलाई के काम की इच्छा में जुटे रहने से ही मानव जाति का कल्याण निहित है।'

उन्होंने बल देकर लोगों से कहा—'धर्महीन राजनीति आत्मा का नाश करती है। वह जीवन को फाँसी लगाने जैसी है। धर्म के मूल में श्रद्धा का निवास है—जहाँ श्रद्धा ही नहीं वहाँ कैसा धर्म? श्रद्धा किसी सलाह पर अपना मार्ग नहीं बनाती इसलिए श्रद्धा अजेय है, पराजित नहीं होती। श्रद्धालुओं का अकर्म भी कर्म हो जाता है।'

1924 को जब वे जेल से छूटकर आये तो देश हिन्दू-मुसलमानों के

दिलों में धधकने लगा था। अपना अधिकांश समय उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास में लगाना शुरू कर दिया जिससे स्वाधीनता के संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध पूरी शक्ति से लड़ उन्हें देश के बाहर खदेड़ सकें।

1925 में एक दिन महात्मा गांधी जी देशबन्धु चित्तरंजन दास के आमंत्रण पर कलकत्ता पहुँचे और उनके मकान पर ठहरे। बंगाल में क्रान्तिकारियों का बड़ा ही दबदबा था इसी कारण गोरी सरकार की नींद हराम थी। चित्तरंजन दास ने तत्कालीन भारत मन्त्री लार्ड बर्कनहेड से स्पष्ट शब्दों में कहा था—'मैं इससे पूर्व भी अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ और फिर स्पष्ट किए देता हूँ कि राजनीतिक हत्याओं या अन्य किसी भी प्रकार की हिंसा का मैं सिद्धान्ततः विरोधी हूँ। किन्तु साथ ही, सरकार को यह भी समझ लेना आवश्यक है कि क्रान्तिकारी चाहे कितनी भी गलती पर हों, उनके तरीके चाहे कितने ही व्यर्थ हों और उनके काम चाहे कितने ही अपराधपूर्ण और निन्दनीय हों, उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य देश की राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए 'बलिदान' करना है।' देशबन्धु ने अपनी तमाम सम्पत्ति देशवासियों की सेवा के लिए ट्रस्ट के सुपुर्द कर दी थी। 1920 में जब उन्होंने असहयोग आन्दोलन में हिस्सा लिया था तो 50 हजार रुपये मासिक की वकालत छोड़ खद्दर के कपड़े पहन एक गरीब आदमी का सादा जीवन जीना शुरू कर दिया था।

देशबन्धु चित्तरंजन दास ने चन्दन नगर के संघ गुरु श्री मतिलाल राय का परिचय गांधी जी से करवाया तो उन्होंने राय से उत्सुकतावश एकान्त में पूछा—'मति बाबू! आपका बड़ा नाम सुना है, प्रसन्नता है आज भेंट हो गई। आपने आज तक जो भी क्रान्तिकारी कार्य किए हैं क्या मुझे आप यथोचित ज्ञान देने की कृपा करेंगे? कृपया आप अपने अनुभव की जानकारी दें, मुझे अपार प्रसन्नता होगी।'

श्री मतिलाल राय ने निस्संकोच अपनी सम्पूर्ण विप्लवी गाथा का इतिहास आदि से अंत तक बड़ी निडरता से सही-सही स्पष्ट शब्दों में कहते रहे। गांधी जी मौन-अवाक् मुद्रा में सुनते गये।

थोड़ी देर के उपरान्त गांधी जी ने कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर मिस्टर टैगर्ट को फोन से सम्पर्क कर तमाम विस्तृत जानकारी देते हुए कहा

—'देखिए, श्री मतिलाल राय मेरे निकट देशबन्धु चित्तरंजन दास के मकान पर ठहरे हुए हैं, आप यदि इच्छुक हो तो इन्हें यहाँ से गिरफ्तार कर सकते हैं।'

पुलिस कमिश्नर टैगर्ट बड़ी आश्चर्यचकित मुद्रा में धैर्यपूर्वक सभी जानकारी सुनता रहा किन्तु असमंजस में था कि शान्ति मार्ग का एक जुझारू राष्ट्र नेता महात्मा गांधी एक क्रान्तिकारी को अचानक इस प्रकार बन्दी क्यों कराना चाहता है? उसने फोन रख दिया और विचार मग्न हो थोड़ी देर के उपरान्त गांधी से सम्पर्क कर फोन पर कहा—'मैं टैगर्ट बोल रहा हूँ। मति बाबू को कहिए वे घर जायें, मैं इस समय उन्हें गिरफ्तार करने का इच्छुक नहीं हूँ।' मति बाबू सभी कुछ हैरानी से बड़ी शान्तिपूर्ण मुद्रा में सुने जा रहे थे—जैसे वे कोई स्वप्न देख रहे हों।

बड़ी गम्भीरता से साहस बटोर श्री मतिलाल राय ने गांधी जी से आश्चर्यचकित मुद्रा में जब इस रहस्य के सन्दर्भ में जानकारी चाही तो बापू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'आप महान हैं मति बाबू। आपने देश के लिए, स्वाधीनता के लिए, बहुत बड़ा कार्य किया है, किन्तु भारतीय जनता वास्तव में आपको जानती नहीं। मति बाबू, यदि मैं आपको आज गिरफ्तार कराने में सफल हो जाता तो निश्चय ही आप जनता के निकट आ जाते, उससे परिचित हो जाते। बैरिस्टर होने के नाते मुझे ज्ञान है कि आपके अभियोग में अधिक-से-अधिक आपको केवल आठ वर्ष का कारावास ही होता। इसके उपरान्त आपको छुपकर जीवन जीना नहीं होता। आप मेरे अच्छे अनुयायी भी बन जाते, मुझे···विश्वास है।' हतप्रभ मति बाबू अवाक् थे, कोई शब्द मुँह से न निकला, दृष्टि बापू पर गड़ी थी, विप्लवी सहकर्मियों के चेहरे आँखों में झूलते रहे।

उस समय बंगाल का क्रान्तिकारी आन्दोलन चरमोत्कर्ष पर था। अरविन्द के आशीर्वादस्वरूप श्री मतिलाल राय एक बँगला पाक्षिक 'प्रवर्त्तक' का प्रकाशन भी कर रहे थे और 15 अगस्त से अंग्रेजी में 'दि स्टैण्डर्ड बियरर' (The Standard Bearer) भी निकालना शुरू कर दिया।

सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के सुअवसर पर गांधी जी

को प्रेषित किया किन्तु उन्हीं के शब्दों में परिणाम निकला—'घुटनों पर झुक रोटी माँगने पर केवल पत्थर का एक टुकड़ा ही मिला।' तब 12 मार्च, 1930 को केवल 79 साहसी सत्याग्रहियों के साथ साबरमती आश्रम से नमक कानून भंग करने समुद्र तट की ओर प्रस्थान कर दिया। गांधी जी की पैदल ऐतिहासिक दांडी-यात्रा ने केवल 24 दिनों में सारे देश की जनता को झकझोर कर रख दिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का जहाँ वायसराय ने मजाक उड़ाया उनके दांडी पहुँचते-पहुँचते कोटि-कोटि नर-नारियों के प्राणों में नये खून का संचार होने लगा। उन्होंने समुद्र तट पर जाकर नमक बनाया और उस गैर-कानूनी ढंग से बने नमक को बेच कर नमक कानून भंग किया गया। 5 मई को उन्हें नजरबंद कर यरवदा जेल भेज दिया गया। देश की जनता भड़की, शहरों, नगरों और गाँवों में सभाएँ हुईं, हड़तालें हुईं, जलूस निकले, स्कूल-कालेज बंद रहे, करोड़ों का विदेशी कपड़ा मुहर-बंद दूकानों में बंद कर दिया गया। सरकार ने दमनचक्र चला कर गोलियों की बौछार की, सामूहिक जुर्माने किए।

14 सितम्बर, 1931 को उन्होंने कहा—'भारत के लोग शासकों का रक्तपात कर स्वाधीनता प्राप्त करने का हामी नहीं है। लेकिन अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतवासी अपने रक्त से गंगाजल को लाल करने में सक्षम हैं।'

1931 में विदेशी हुकूमत ने भिन्न-भिन्न विचारों के प्रतिनिधियों को एकत्रित कर लन्दन में गोलमेज सम्मेलन कर प्रचारित करना चाहा कि भारतीय स्वयं एकमत नहीं हैं। गांधी जी अकेले ही शासन के पूरे अधि-कारों की माँग के लिए सम्मेलन में अड़े रहे, इसलिए वार्त्ता असफलता हो गई। 28 दिसम्बर को वे भारत निराश लौट आए। कई नेता पहले ही यहाँ गिरफ्तार कर लिए गए थे और 4 जनवरी, 1932 को प्रातः गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गये।

गांधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता और हरिजन उद्धार के लिए अपना तन, मन, धन व सर्वस्व होम कर दिया, किन्तु मोहम्मद अली जिन्ना और भीमराव अम्बेडकर की हठधर्मिता से उनके अथक प्रयासों को भयंकर आघात का सामना करना पड़ा, चूँकि अंग्रेजों का दोनों पर ही वरदहस्त

था।

17 अगस्त, 1932 को इंग्लैंड के प्रधानमंत्री ने साम्प्रदायिक समस्या के हल के नाम पर अछूतों को भी मुसलमानों की तरह पृथक निर्वाचन अधिकार दे ऐसी आग सुलगाई जिससे वे हिन्दुओं से हमेशा के लिए अलग-थलग पड़ जायें। जेल में गांधी जी को जब सूचना मिली 20 सितम्बर, 1932 को उन्होंने आमरण अनशन कर दिया। देशवासियों में हलचल हुई, कोहराम मचा जिसकी गूँज लन्दन सरकार तक पहुँची। भारतीय नेताओं और गांधी जी की दृढ़ता के सामने ब्रिटिश सरकार को विवश होकर घुटने टेकने पड़े। सात दिन के पश्चात गांधी जी ने अपना अनशन तोड़ डाला।

17 सितम्बर, 1934 को कांग्रेस से अलग होने की घोषणा कर उन्होंने पूर्णरूप से ग्रामोत्थान और हरिजनोद्धार के कार्यों में जुट गए।

1939 में राजकोट, जयपुर और उड़ीसा की रियासतों के अधिकारों की माँग के कारण संघर्ष छिड़ा तो राजकोट के आंदोलन में गांधी जी उतरे पर गोरी सरकार ने उनके मुकाबले मुस्लिम लीग खड़ी कर उन्हें असफल कर दिया।

द्वितीय महायुद्ध 1939 में शुरू हुआ तब वायसराय लिनलिथगो ने भारत के सभी दलों-वर्गों से अपील की कि वे जर्मन के विरुद्ध युद्ध में सहयोग करें। 8 से 14 सितम्बर, 39 को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक वर्धा में हुई। गांधी जी ने अंग्रेजों को किसी प्रकार का सहयोग देने से इन्कार कर दिया। देश के सभी मन्त्रिमण्डलों को अपना पद त्याग कर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने की सलाह देशवासियों ने मान एकता का परिचय दिया। सर्वप्रथम उन्होंने व्यक्तिगत रूप से आंदोलन चलाया किन्तु जब महायुद्ध की विभीषिका विकराल रूप धारण कर हिन्दुस्तान के दरवाजे खटखटाने लगी तो 9 अगस्त, 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन छेड़ 'करो या मरो' का नारा बुलन्द किया।

गोरी सरकार का दमन चक्र घूमा। बड़े-बड़े नेता पकड़ लिए गए। क्रोधित जनता में उबाल आया, हिंसा का ज्वालामुखी फुटा, स्थान-स्थान पर रेल पटरियाँ उखाड़ी गयीं, पोस्ट आफिस, सरकारी संस्थानों को क्षति पहुँची तो सरकारी तन्त्र ने भी भीषण गोली-बारी और लाठियाँ चलाकर

लोगों को मौत के मुंह में धकेल दिया। असंख्य नारियाँ विधवा हुईं, करोड़ों बच्चे अनाथ हुए, संघर्ष जारी था।

गांधीजी ने जनता को ललकारते हुए लोगों से कहा—'इस स्वतन्त्रता संघर्ष में आपको सर्वस्व बलिदान के लिए तैयार रहना है। बीवी, बच्चे, बन्धु, मित्रों सभी से सम्बन्ध तोड़ना होगा। यह संघर्ष न शराबबंदी के लिए है, न नमक बनाने की सुविधाओं के लिए है। मैं आजादी के लिए जा रहा हूँ, आपको एक मंत्र देता हूँ, करो या मरो। मुझे गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए आपका सहयोग चाहिए। मरने से न घबराने वाले ही जीना जानते हैं। आजादी डरपोकों के लिए नहीं, जिनमें करने की, मर मिटने की हिम्मत है, वही जिन्दा रहने के अधिकारी हैं। और वे ही मेरे साथ आयें।' 1942 के अन्तिम 5 महीनों में 60 हजार से अधिक लोग गिरफ्तार हुए, 18 हजार बगैर मुकदमा चलाए हवालात में रखे गए और सरकारी आँकड़ों के अनुसार 949 पुलिस-मिलिटरी फायरिंग में हताहत हुए एवं 1930 गम्भीर रूप से घायल हुए। गांधी जी के प्रतिभाशाली सहयोगी श्री महादेव देसाई एवं उनकी सहधर्मिणी श्रीमती कस्तूरबा जेल जीवन की कठोरताओं के फलस्वरूप जेल में रहस्यपूर्ण ढंग से इस संसार को त्यागकर दोनों शहीद हो गए। कांग्रेस सदस्यों से मिलकर जब ब्रिटिश आरोपों का खण्डन करने से जेल में उन्हें रोका गया तो 1943 में उन्होंने 21 दिन का उपवास रख विश्व के चिन्तनशील लोगों में हलचल मचा दी। वायसराय के तीन सदस्यों ने परिषद से त्यागपत्र दे दिया जिससे देश में भड़की उत्तेजना की ज्वाला रुक सके। 6मई, 1944 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। सरकार को यह आभास हो चला था, भारत की जनता अधिक दिनों तक गुलाम बनाकर रखी नहीं जा सकती, दमन और अत्याचारों से विद्रोह दबेगा नही, भड़केगा।

1944 के सितम्बर मास में वे लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना से भी मिले लेकिन परिणाम कुछ न निकला। ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1945 को वायसराय को लन्दन बुलाया, जहाँ से लौटकर लार्ड वेवल ने 14 जून को ब्रिटिश सरकार की भारत-सम्बन्धी नीति स्पष्ट करते हुए कांग्रेस कार्य समिति सदस्यों को जेल से रिहा कर दिया गया। वायसराय की

घोषणा के अनुरूप 25 जून को शिमला सम्मेलन में जिन्ना ने अड़ियल रुख के कारण अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया।

2 सितम्बर, 1946 को पंडित नेहरू भारत के अन्तरिम प्रधानमंत्री बने और शासन की बागडोर जनता के हाथ आ गई। श्री जिन्ना ने देश के मुसलमानों को इस दिन मातम मनाने की सलाह देकर वैमनस्य की ऐसी आग भड़कायी जिसकी धधकती चिनगारियों से देश में दंगे भड़के, नोआखाली तक आग की लपटों में जल उठा, कलकत्ते में भयंकर दंगे हुए, हजारों दुकानें, घर जलाए गए, लूटे गए, लाखों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया।

गांधी जी ने दुखी मन से पदयात्राएँ करते हुए लोगों से कहा—'मूर्खता-पूर्ण हिंसा यदि कोई बात निश्चित रूप से कर सकती है तो यह कि अंग्रेजों की या पराई अन्य राज्यसत्ता कुछ समय के लिए यहाँ और टिकी रहे। यदि हम ब्रिटिश तोपों और संगीनों की आवश्यकता आज भी अनुभव करें तो ब्रिटिश राजसत्ता यहाँ से नहीं हट सकती, यदि हट गई तो और कोई पराई राज्यसत्ता हमारे ऊपर आ धमकेगी।'

25 अक्तूबर को बिहार में प्रतिक्रियास्वरूप नोआखाली दिवस मनाया गया। धर्मान्ध हिन्दुओं ने भी मुसलमानों से बदले की भावना से प्रान्त-भर में मार-काट की, आगजनी, लूटपाट हुई किन्तु लीग पाकिस्तान लेने की माँग पर अड़ी रही। रक्तपात जारी रहा।

देश में भयंकर तनावपूर्ण साम्प्रदायिकता की आग में सैकड़ों हिन्दू मारे गए, धन और जान-माल की क्षति हुई, अबलाओं के साथ बलात्कार किए गए, मन्दिर तोड़े गए और बलात् लोगों का धर्म परिवर्तन किया गया। मनुष्यता को ताक में रखकर मुस्लिम लीग ने घृणित से घृणित कार्य कर मानवता को कलंकित कर देश का विभाजन करा पाकिस्तान की नींव डलवा कर छोड़ी।

गांधी जी देश के विभाजन के लिए कतई तैयार नहीं थे किन्तु भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबैटन तथा कांग्रेस के अन्य नेताओं ने विभाजन को ही समस्या का एक मात्र हल बताकर उन्हें मना लिया। 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु विभाजन के मूल्य पर

प्राप्त आजादी ने पाकिस्तान में हिन्दुओं और हिन्दुस्तान में मुसलमानों के साथ सामूहिक हत्याएँ, आगजनी, अपहरण, बलात्कार जैसे अमानुषिक अत्याचारों से मानवता की एक बार फिर अर्थी निकाल डाली। महात्मा गांधी इधर से उधर शान्ति का संदेश देते देश में दौड़ते फिरे, उनके सपनों का स्वाधीन भारत जैसे धूलि-धूसरित होने लगा था। कलकत्ते की साम्प्रदायिक आग थोड़ी ठण्डी पड़ी तो दिल्ली में भयंकर रक्तपात शुरू हो गया।

वह प्रतिदिन प्रार्थना सभा में शान्ति का उपदेश देते रहे। उन्होंने विनयपूर्वक लोगों को समझाया—'जो धर्म व्यावहारिक बातों पर ध्यान नहीं देता और उन्हें हल करने से मदद नहीं करता, वह धर्म नहीं है।'

'हमारी सभ्यता चूहे की भाँति हमें फूँक-फूँक कर काटती है। जब हमें पीड़ा की टीस अनुभव होने लगेगी तो उसकी तुलना मे अपने अंधविश्वास मीठे लगेंगे। मैं नहीं कहता उन अन्धविश्वासों को कायम रखना आवश्यक है। नहीं, अंधविश्वासों से लड़ना तो उचित है पर वह लड़ाई अपने धर्म को भूल जाने पर नहीं लड़ी जा सकती।'

'धर्म-भावना के विना न कोई बड़ा कार्य कभी सम्पन्न हुआ है और न भविष्य में होने की सम्भावना है।'

'मनुष्य धर्म के बिना जी नहीं सकता। कुछ घमण्डी लोग अपनी बुद्धि-बल पर कह सकते हैं उनका धर्म से कोई नाता नहीं, वास्ता नहीं। परन्तु यह ऐसी बात है जब मनुष्य यह तो माने वह साँस तो लेता है पर उसके नाक नहीं है। जो मनुष्य धर्म को नहीं मानता, वह भी धर्म के बिना नहीं रह सकता और न रहता है।'

'धर्म को उसकी ग्रंथि से मुक्त करना परमावश्यक है किन्तु समान रूप से यह भी आवश्यक है कि नैतिक प्राप्तियों के लिए भौतिक सम्पत्ति को जो लोग अधिक तरजीह देते हैं उनके नैतिक बहानों का खोखलापन निश्चित रूप से प्रकट कर दिया जाए। एक गुंडे को उसके शोहदेपन से विमुख करने की अपेक्षा एक अज्ञानी धर्मांध को उसकी भूल से विमुख करना अधिक सरल है।'

'धर्म और व्यवहार कभी परस्पर-विरुद्ध वस्तुएँ नहीं हैं। जब भी

व्यवहार धर्म विरोधी दृष्टिगोचर हो, वह त्याज्य है। धर्म की परीक्षा तभी होगी जब वह व्यवहार में परिणत होगा। राजनीति को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म से विच्छिन्न राजनीति गिराने वाली चीज है, उससे किसी का कोई भला होना सम्भव नहीं है।'

'धर्म कोई अछूत नहीं कि उसे राजनीति की गोष्ठी में न ठहरने दिया जाए। धर्म राजनीति को अपवित्र नहीं, पवित्र करता है। आदमी के लिए जब अच्छे दिन आएँगे, वह राजनीति को धर्म से अलग नहीं रख पाएगा।'

अहिंसा के मसीहा बापू जी ने अपनी मृत्यु से केवल एक दिन पूर्व अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के महासचिव आचार्य जुगल किशोर को एक पत्र लिखकर कांग्रेस के संविधान का प्रारूप भेजा था जिसे उन्होंने 7 फरवरी, 1948 को प्रेस को जारी किया था। हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है—

'दो टुकड़े होने पर भी भारत की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साधनों द्वारा आजादी मिल जाने के बाद अब कांग्रेस अपने मौजूदा स्वरूप, यानी एक प्रचार वाहन और भारतीय मशीन के तौर पर अपनी उपयोगिता खो चुकी है। भारत के सात लाख गाँवों को इसके शहरों और कस्बे से फर्क के संदर्भ में देखें तो अभी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी मिलनी बाकी है। भारत के प्रजातान्त्रिक लक्ष्य की ओर प्रगति में सैन्य शक्ति पर नागरिक शक्ति की प्रधानता के लिए संघर्ष होना तय है। इसे राजनैतिक दलों और साम्प्रदायिक संगठनों की घटिया प्रतिद्वंद्विता से अलग रखना चाहिए। इन और इन जैसे तमाम कारणों से अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (ए० आई० सी० सी०) मौजूदा कांग्रेस संगठन को भंग करने का प्रस्ताव करती है और नीचे दिए गए नियमों के तहत एक लोक सेवक संघ के गठन को प्रस्तावित करती है, जिसे समय की माँग के अनुसार इन नियमों में परिवर्तन का अधिकार होगा।'

पाँच ग्रामीण या गाँव से जुड़ी मानसिकता वाले वयस्क पुरुषों या महिलाओं की प्रत्येक पंचायत से एक इकाई बनेगी।

एक-दूसरे के समीपस्थ ऐसी दो पंचायतें मिलकर एक कार्यकारी दल बनाएंगी जिसका नेता उन्हीं में से चुना जाएगा।

जब ऐसी 100 पंचायतों का निर्माण हो जाएगा, तो पहली श्रेणी के

50 नेता अपने बीच से दूसरे दर्जे का एक नेता चुनेंगे। इस बीच, पहली श्रेणी के नेता दूसरे दर्जे के नेता के अधीन काम करते रहेंगे। दो सौ पंचायतों के समानांतर समूह तब तक बनाए जाएँगे जब तक पूरे भारत में ऐसा न हो जाए। हर पंचायत समूह में पहले और दूसरे दर्जे के नेताओं को नेता का चुनाव करना होगा। दूसरे दर्जे के सभी नेता अलग-अलग अपने क्षेत्रों के लिए और सामूहिक रूप से पूरे भारत के लिए काम करें। दूसरे दर्जे को अपने बीच से एक मुखिया चुनने का अधिकार होगा, जो सभी समूहों को नियन्त्रित और नियमित करेगा। (प्रान्तों और जिलों का अन्तिम रूप से गठन अभी भी अनिर्णीत अवस्था में है, इसलिए सेवकों के इस समूह को प्रान्तीय और जिला परिषदों में विभाजित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है और सम्पूर्ण न्यायाधिकार उस समूह या समूहों में निहित किया गया है जिसको किसी भी निश्चित अवधि में गठित किया जा सकता है। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि सेवकों का यह निकाय अपनी शक्ति या अधिकार अपने स्वामी, यानी सम्पूर्ण भारत के प्रति निःस्वार्थ भाव व विवेक से की गई सेवा से प्राप्त करता है।)

1. प्रत्येक कार्यकर्त्ता आदतन हाथ से बुने हुए सूत या ए० आई० सी० ए० द्वारा प्रमाणित सूत से बनी खादी पहनेगा। कोई भी कार्यकर्त्ता मद्यपान नहीं करेगा। अगर कार्यकर्त्ता हिन्दू है तो व्यक्तिगत रूप से और अपने पारिवारिक स्तर पर किसी भी प्रकार की छुआछूत को पूरी तरह से उसे त्यागना होगा। और उसे अन्तर साम्प्रदायिक एकता के आदर्श में विश्वास रखने वाला होना चाहिए। उसे सभी धर्मों के प्रति सम्मान रखने वाला और जात धर्म, लिंग आदि के भेद से परे सभी के लिए अवसर और स्तर की समानता में विश्वास रखने वाला होना चाहिए।

2. वह अपने अधिकार क्षेत्र के प्रत्येक ग्रामीण से निजी सम्पर्क स्थापित करेगा।

3. वह ग्रामीणों के बीच से ही कार्यकर्त्ता को सूचीबद्ध करेगा और उन्हें प्रशिक्षित करेगा, और इन सबके लिए एक रजिस्टर रखेगा।

4. वह अपने दैनिक कार्य का रिकार्ड रखेगा।

5. वह गाँवों को इस प्रकार संयोजित करेगा ताकि वे अपनी कृषि और

हस्तशिल्प के माध्यम से आत्मनियंत्रित और स्वावलम्बी हो सकें।

6. वह ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य और स्वच्छता के बारे में प्रशिक्षित करेगा और उनमें खराब स्वास्थ्य और बीमारियों को रोकने के सभी उपाय करेगा।

7. वह ग्रामीण जनों को हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार नई तालीम की पद्धति से शिक्षित करेगा।

8. वह यह भी देखेगा कि जिनके नाम वैधानिक मतदाता सूची में नहीं है उनके नाम मतदाता सूची में उचित तरीके से अंकित हो जाए।

9. वह मतदान का अधिकार दिलाने हेतु उन लोगों को वैधानिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगा जिन्होंने अभी तक यह शिक्षा प्राप्त नहीं की है।

संघ निम्न स्वायत्त संस्थाओं को स्वयं से संबद्ध करेगा :

(i) ए० आई० एस० ए० (आल इंडिया स्पिनर्स एसोशिएशन)
(ii) ए० आई० वी० आई० (आल इंडिया विलेज एण्ड इंडस्ट्री)
(iii) हिन्दुस्तानी तालीमी संघ।
(iv) हरिजन सेवक संघ।
(v) गौ सेवा संघ।

नई दिल्ली, 29 जनवरी, 1948

एम० के० जी०
(मोहनदास करमचंद गांधी)

आजादी तो मिल गई किन्तु देश के टुकड़े हो गए—भारत और पाकिस्तान। अखंड भारत खंडित हो गया।

जब उनकी भाग-दौड़ से भी दंगों का सैलाब नहीं रुका, साम्प्रदायिकता की आग बढ़ती गई तो उन्होंने 13 जनवरी, 1948 से ही आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया था। तीन-चार दिन के मात्र अनशन ने उपद्रवी ज्वाला को शान्त कर दिया। हिन्दू-मुसलमानों के प्रतिनिधियों ने सामूहिक सभाएँ कीं और एकजुट होकर सभी के शान्ति का विश्वास दिलाने पर अपना उपवास तोड़ नई दिल्ली की हरिजन बस्ती में रहने लगे।

नित्य प्रति सायंकाल प्रार्थना-सभा में आकर वे शान्ति, प्रेम, दया, सहिष्णुता और मानवता का पावन संदेश अपने श्रद्धालुओं को देते।

अचानक 30 जनवरी, 1948 की काली संध्या को एक युवक नाथूराम गोडसे ने प्रार्थना मंच के निकट पहुँचकर अपनी पिस्तौल से तीन गोलियाँ उनकी छाती में दाग दीं। लोग समझ नहीं पाए, एक क्षण में सब कुछ लुट गया था।

शान्ति के पुजारी और अहिंसा के मसीहा ने अपने दोनों हाथ जोड़ केवल तीन बार मुँह से 'हे राम' का पावन उच्चारण करते हुए साम्प्रदायिकता की बलि वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे डाली जिससे भविष्य में राष्ट्रीय एकता का पुष्प सदा फलता-फुलता और महकता रहे। गोडसे तो फाँसी चढ़ गया किन्तु हत्या का षड़यंत्र राख में दबा है।

उनकी जीवन ज्योति बुझ गई, देश में गहन अंधकार के बादल भी मँडराए किन्तु उनके बलिदान ने विश्व के इतिहास में एक अभूतपूर्व स्थान बना लिया। आज वे अमर हैं।

योगीराज अरविन्द घोष

[1872-1950 ई०]

भारत के ऋषियों, संतों तथा सत्यद्रष्टाओं में अरविन्द का स्थान सदा चिरस्मरणीय रहेगा जिनका शुभागमन विश्व के आध्यात्मिक क्षितिज पर एक अभूतपूर्व अलौकिक सूर्योदय के समान हुआ। देश की अखंडता, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उन्होंने देश में व्याप्त कुरीतियों, संहार, ध्वंस, निराशा और विषाद-भरे वातावरण में नवीन सम्भावनाओं, आशाओं का ऐसा सुनहरा प्रकाश उँडेला जिसके आलोक ने जाति, वर्ण और वर्गों के भेदों से विदीर्ण मानवता को नवीनतम, व्यापक तथा सूक्ष्मतम राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया।

बंगाल के एक सम्पन्न परिवार में 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के एक सिविल सर्जन डॉ० कृष्णधन घोष के घर में उनका जन्म हुआ था। उनकी माता का नाम श्रीमती स्वर्णलता देवी था जो श्री राजनारायण बसु की पुत्री थीं। पिता डॉक्टर कृष्णधन घोष पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता के रंग में पूर्णरूपेण रंगे थे। और अपने पुत्रों को उच्च शिक्षा के माध्यम से सरकारी अधिकारी बनाने के स्वप्न देख रहे थे। अरविन्द से बड़े उनके दो पुत्र और थे।

पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें दार्जिलिग के एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने भेजा गया। वहाँ उनकी कुशाग्र बुद्धि, चंचलता और हाजिर जवाबी ने सबको ही अपने अध्यापकों का मन मोह लिया था। इन तीन भाइयों के अतिरिक्त इस स्कूल में सभी अंग्रेज बच्चे पढ़ने आते थे। सात वर्ष की उम्र

में वे अपने माता-पिता के साथ लन्दन गए जहाँ दोनों भाइयों सहित उन्हें एक सम्पन्न और सभ्य अंग्रेज डूएट दम्पति के संरक्षण में शिक्षा ग्रहण करने के लिए छोड़ दिया गया।

अचानक ही मैनचेस्टर परिवार को इंग्लैंड से बाहर जाना पड़ा तो 1885 में उन्हें भाइयों सहित लन्दन के सेन्ट पाल स्कूल में भरती करा दिया गया। शिक्षारत छात्र ने अंग्रेजी काव्य, लैटिन भाषा और फ्रांसीसी साहित्य का विशेष अध्ययन कर अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

सन् 1890 में अरविन्द ने किंग्स कालेज से ग्रीक और लैटिन में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित करते हुए उच्च श्रेणी की छात्रवृत्ति प्राप्त कर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश पा लिया। अरविन्द ने यहीं 'लोटस एण्ड डैगर' नामक संस्था की सक्रिय सदस्यता ग्रहण की और विदेशों की महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ भी प्रकाशित हुईं।

18 वर्ष की आयु में उन्होंने आई० सी० एस० की उच्च परीक्षा उत्तीर्ण कर ली किन्तु स्वयं घुड़सवारी की परीक्षा में जानबूझ कर सम्मिलित नहीं हुए क्योंकि अंग्रेजों की चाकरी कर जीवन यापन करने का लक्ष्य उनके मन में नहीं था।

बचपन से ही वे भारतीय राष्ट्रवाद की एक विलक्षण उपज थे जो आगे चल कर प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के मेधावी-प्रखर प्रवक्ता के रूप में उभरे।

वे आध्यात्मिक जगत् के महान रहस्यद्रष्टा, योगी और दार्शनिक बने जो अव्यावहारिक स्वप्नद्रष्टा नहीं, जनसाधारण के मार्गदर्शन के लिए, भारत माँ की पराधीन बेड़ियों को काटने के लिए, न्याय के लिए, अन्याय से संघर्ष करने के लिए, गरीब, शोषित और पीड़ितों की आँखों के आँसू पोंछने के लिए और धरती पर स्वर्ग को उतारने के लिए अपना तन, मन और धन न्योछावर कर दिया। स्वतंत्रता उनका जीवन लक्ष्य था और गहन स्वदेशाभिमान उनके रग-रग में प्रवाहित हो रहा था।

इंग्लैंड में ही उनकी भेंट बड़ौदा नरेश से हुई जिन्होंने उन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त कर लिया था। 14 वर्षों के उपरांत वे अपने दोनों भाइयों सहित भारत वापिस लौट रहे थे कि उनके पिता को संदेश मिला

कि उनके पुत्रों को लाने वाला जहाज समुद्र में डूब गया। यह दुखद समाचार पिता डॉक्टर कृष्णधन घोष सहन नहीं कर सके और अचानक उनकी मृत्यु हो गई। उनके स्वप्न बिखर गए थे।

इस प्रतिभावान स्वतंत्र विचारधारा वाले व्यक्ति ने बड़ौदा नरेश की चाकरी में जब अपने को अनुपयुक्त पाया तो नौकरी छोड़ बड़ौदा कॉलेज के प्रोफेसर हो गए।

उन्होंने वहाँ संस्कृत, गुजराती, बँगला, मराठी और अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन कर भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त कर वेद-उपनिषद आदि ग्रंथों के रहस्य को समझ लिया। कुछ समय बाद भारतीय साहित्य और दर्शनशास्त्र ने उन्हें पूर्णरूपेण सनातनी बना डाला और उन्होंने मृणालिनी देवी से विवाह कर गृहस्थ जीवन में भी प्रवेश किया।

उनकी रुचि योगाभ्यास की ओर भी बढ़ी। उनके जीवन का लक्ष्य था—सादा जीवन एवं उच्च विचार। कुछ समय के बाद वे नेशनल कालेज बड़ौदा के प्राचार्य भी नियुक्त हुए। वहाँ रह कर उन्होंने अपनी गहरी राजनैतिक सूझ-बूझ और तांत्रिक उद्बोधन से ओत-प्रोत ओजस्वी रहस्यपूर्ण लेखमाला 'इन्दु प्रकाश' में छपवाई। प्रकाशित होने पर सारे देश के विद्वान-मनीषियों का ध्यान उसने अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

उनका विचार था—'यदि तुम्हें अध्ययन करना है तो मातृभूमि के लिए करो। अपनी देह, मन और आत्मा को उसी की सेवा के योग्य बनाओ। अपनी आजीविका इस भावना से अर्जित करो कि तुम देश के लिए जी सको।'

अंग्रेजों ने जनता को जितनी पीड़ा पहुंचाई, जोर-जुल्म किए उतनी ही विद्रोह की आग भड़कती गयी। सारा देश गुलामी से मुक्ति चाहता था। पंजाब की तरह बंगाल भी पीछे नहीं था। उस समय देश में क्रांतिकारियों का एक संगठन श्री मतिलाल राय के नेतृत्व में 'प्रवर्त्तक संघ' नामक प्रतिष्ठान द्वारा फ्रेंच शासित चन्दन नगर में सक्रिय था जो कुर्सी के कारखाने के नाम पर बम बनाने का कार्य सम्पन्न कर देश के युवा शक्ति को संगठित कर उनकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखता। आजादी के दीवानों के लिए यही एक सुरक्षित छुपने, लड़ने और नई-नई योजनाओं को क्रिया-

न्वित करने का सर्वोत्तम अड्डा था।

कुछ समय के बाद उन्होंने बड़ौदा की नौकरी छोड़ दी और कलकत्ता के नेशनल कालेज में प्रिन्सिपल का पदभार सम्हाल लिया। 'वन्दे मातरम्' एवं 'कर्मयोगी' पत्रों का सम्पादन करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना और स्वाधीनता संघर्ष के लिए ऐसे लेख प्रकाशित किए जिन्होंने भारतीयों में आत्मविश्वास और मनोबल को ऊँचा उठाया।

जिस होनहार युवक का जीवन प्रारम्भ और पालन-पोषण इंग्लैंड जैसे स्वतंत्र वातावरण से विकसित हुआ वह भला अपने पराधीन देश के अत्याचारों से कब तक आँखें मींच सकता था।

चन्दन नगर फ्रांसीसी उपनिवेश होने के कारण ब्रिटिश शासकों की क्रूर दृष्टि से अछूता था इसलिए भारतीय स्वतंत्रता के क्रांतिकारियों के लिए 1915 से 1945 तक यह क्षेत्र उनकी शरणस्थली बन चुका था जहाँ लोगों ने सांस्कृतिक, शारीरिक क्लबों के रूप में अपनी गोपनीय गतिविधियों का केन्द्र बना लिया था। यहाँ जागृति के साथ नवयुवकों को घुड़सवारी, छुरेबाजी, लाठी चलाने, तलवार चलाने आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी जिसका आधार प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर आधारित था।

सन् 1912 में बंग-भंग विरोधी आंदोलन के क्रम में इसी केन्द्र के साहसी क्रान्तिकारी रास बिहारी बसु ने दिल्ली में बड़े लाट हार्डिंग को अपने बम से उड़ाने की योजना बनाई थी। पुलिस ने उनका पीछा किया किन्तु वे पकड़े नहीं जा सके। इस प्रकार निरन्तर 30 वर्षों तक इस 'प्रवर्त्तक संघ' की अनेक क्रांतिकारियों की गौरव गाथा की अभूतपूर्व कहानी में स्वाधीनता संग्राम की महत्त्वपूर्ण भूमिका का इतिहास छुपा है।

जब अरविन्द बड़ौदा कालेज छोड़ कलकत्ता आए उन्हें 700 रुपये प्रति माह प्राप्त होते थे। किन्तु यहाँ पहुँचते ही उन्होंने आजादी के नाम पर दारिद्र्य व्रत धारण कर कालेज स्क्वायर के निकट एक छोटे-से कमरे में रहना पसन्द किया।

एक साधारण चटाई पर विश्राम करते जहाँ आगन्तुकों के लिए मात्र एक छोटी लकड़ी की बेंच के अतिरिक्त अन्य वस्तु उपलब्ध न थी। धनाभाव के कारण अपने साथ पत्नी नहीं रख सकते थे इसलिए उसे मायके

प्रवास करना पड़ा।

एक दिन पत्नी का पत्र अरविन्द को प्राप्त हुआ, लिखा था—'कृपया अपने छोटे-मोटे खर्च के लिए केवल 10 रुपये की व्यवस्था करने की कृपा करें।' उन्होंने उत्तर दिया—'मैंने तो देश की आजादी के लिए दारिद्र्य व्रत ले लिया है, मेरे पास 10 रुपये कहाँ? जिस प्रकार जहाँ तक सम्भव हो, अपने दिन काटो।'

श्री विपिनचन्द्र पाल ने एक दिन कहा था कि आज भारतीय राष्ट्रीय एकता के प्रचार में निपुण सबसे कम आयु और सबसे बड़े व्यक्तित्व के धनी अरविन्द हैं।

अरविन्द के अनुसार 'भारत एक भौगोलिक सत्ता ही नहीं, शक्तिमयी मूर्तिमती भारत माँ है। वह कल्पना नहीं, मात्र भूखंड नहीं, एक महाशक्ति है, अपनी पूजनीय मातृभूमि है। इस देश की कोटि-कोटि जनता की व्यष्टि-गत महान शक्तियों का वे समष्टिगत रूप है।'

उन्होंने अपनी ओजस्वी लेखनी से विचार व्यक्त किए—'हर राष्ट्र के लोग अपने आदर्शों और आवश्यकताओं के अनुसार स्वभाव के अनुरूप अपनी शक्तियों का उपयोग कर स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन यापन करने के अधिकारी हैं। हम पर अपनी निकृष्ट सभ्यता थोपने, अपने को सुसंस्कृत और योग्यता के आधार पर तर्कहीन जाल में फँसा कर विदेशी शासक हम को अपने उत्तराधिकार से कदापि वंचित नहीं कर सकते। जो राष्ट्र जाति अथवा जन समुदाय अपनी भाषा की महत्ता खो देगा वह स्वाभिमानपूर्वक सच्चा जीवन जीने में सक्षम नहीं हो सकता।'

'आज की प्रचलित शिक्षा प्रणाली मनुष्यता की हत्या करने के लिए एक षड्यंत्र है। यह मनुष्य के शरीर की ही हत्या नहीं कर रही, उसकी अन्तरतम आत्मा के स्वरूप का भी हनन करती है जो मानव के नश्वर श्वास से भी अधिक मूल्यवान और प्राणवान है।'

उन्होंने कहा—'आध्यात्मिकता का अर्थ संन्यास'या संसार के परित्याग से नहीं और न यह कि प्रकृत सहजवृत्तियों और वासनाओं को स्वच्छन्दता-पूर्वक खुलकर खेलने दिया जाए। योग प्रकृति की अधीनता स्वीकार न कर प्रकृति पर प्रभुत्व रखने में सक्षम है।'

उन्होंने कहा—'युवकों को ही नई दुनिया का निर्माण करना है। देश का निर्माण वे नहीं कर सकते जो पाश्चात्य संस्कृति, स्पर्धात्मक व्यक्तित्व-वाद, भौतिकवादी समाजवाद को अपनाने की मन में लालसा रखते हैं। हम लोगों ने देश अर्थात् राष्ट्रमाता की भगवान के समान पूजा की है। यही पूजा पूर्ण ब्रह्म तक पहुँचने का सफल मार्ग भी है—यही सोपान है। सच्चे अर्थों में हमें 'वन्दे मातरम्' के मंत्र की उपासना भी करनी है तभी कल्याण सम्भव है। ध्यान करने की बात यह है कि जब तक उपासना अनवरत होती रहती है तो परमात्मा का बँधा हुआ हाथ भी खुल जाता है।'

बंग-भंग आंदोलन के कारण सारा बंगाल विप्लव की ज्वाला में धधकने लगा। नेतृत्व अरविन्द के कंधों पर आ गया जिन्होंने अपने विप्लवी तंत्र के साथ वेदान्त के आधार पर आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा भी नव-युवकों को दी।

मैनचेस्टर और लंकाशायर के व्यावसायिक केन्द्रों के द्वार धीमे-धीमे बंद होने लगे जब नगरों, गाँवों, हाट-बजारों में विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जाने लगी। असंख्य देशवासियों के मुखों से एक साथ 'वन्दे मातरम्' का स्वर निकल कर जब वायुमण्डल में गुंजायमान होने लगा तो अंग्रेजों ने 'वन्दे मातरम्' मंत्रोच्चारण निषेध करा दिया। और इस प्रकार बंगाल का क्रांतिकारी आंदोलन चरमोत्कर्ष की दिशा में बढ़ने लगा।

अरविन्द ने गुप्त क्रांतिकारी दल को संगठित कर डाला जिसे अंग्रेजों ने टैररिस्ट करार देते हुए उनके पीछे पड़ गए। उन्होंने इसी बीच लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से भी सम्बन्ध स्थापित कर देश में कई गुप्तचर शाखाएँ खोल दीं जिनकी प्रबलतम सम्पर्क कड़ी ज्योतिन बसु थे जिनका एक पैर कलकत्ता और दूसरा इलाहाबाद में होता।

एक दिन अपनी पत्नी मृणालिनी देवी के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा—'इन दिनों मुझ पर तीन पागलपन सवार हैं। सर्वप्रथम मेरी धारणा है कि भगवान ने जो शिक्षा, प्रतिभा, धन और गुण दिए हैं वे सभी उसी की ही धरोहर हैं। भरण-पोषण के लिए जो अत्यन्त ही आवश्यक वस्तुएँ अपने लिए चाहिए उन्हीं का मात्र उपयोग करने का हमें अधिकार है, शेष को वापिस भगवान को ही लौटा देना उचित है। दूसरा विचित्र

पागलपन है कि भगवान के साक्षात् दर्शन मेरे लिए परमावश्यक हैं। तीसरा पागलपन यह कि मैं स्वदेश की भी माँ के समान भक्ति करता हूँ, उपासना करता हूँ, उसे माँ ही मानता हूँ। यदि पुत्र के सामने कोई राक्षस उसकी छाती पर बैठकर रक्तपात करने को उद्यत रहे तो उस लड़के का कर्त्तव्य क्या निश्चिन्त होकर भोजन करने, स्त्री और परिजनों के साथ आमोद-प्रमोद में समय बिताने का है या माँ के उद्धार के लिए उसे तत्काल दौड़ पड़ना चाहिए ?'

'जीवन का एक ही उद्देश्य है—भगवान को पाना और उसी की सेवा करना। भगवान वास्तव में हमसे बहुत दूर नहीं है। वह हमारे विचारों और भावनाओं से बहुत ऊँचा है किन्तु हमारे अन्दर ही बड़ी गहराई से छुपा बैठा है। भगवान में ही है सच्चा सुख, शांति, निश्चलता और सभी समस्याओं का समाधान। अपनी सभी समस्याएँ भगवान को सच्चे मन से सौंप देने पर वे निश्चित रूप से उनका समाधान कर तमाम कठिनाइयों से मुक्त करा देंगे, यही सत्य है।' अरविन्द की धार्मिकता में संकीर्णता कतई नहीं थी क्योंकि उनके मुसलमान शिष्यों में कलकत्ता के विलायत हुसैन और अलीगढ़ के मौलाना हसरत गोहानी प्रमुख थे। उनका त्याग-भरा जीवन स्वतन्त्रता संग्राम के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हो चुका था।

मुजफ्फरपुर में किंसफोर्ड की गाड़ी को लक्ष्य कर बम फेंका गया जिसमें श्रीमती कैनेडी और उसकी बेटी मारी गयी और वह बच गया। इस कांड में क्रांतिकारी खुदीराम बोस व प्रफुल्ल चाकी पकड़े गए। दोनों ने ही अपने तालू में रिवाल्वर रख प्राणान्त करना चाहा किन्तु प्रफुल्ल चाकी ही आत्महत्या कर पाए, दुर्भाग्यवश, खुदीराम पुलिस की पकड़ में आ गए।

दूसरे दिन 2 मई, 1908 को मुरारिपुकुर के मानिकतल्ला बगान में जब तलाशी ली गई श्री अरविन्द के साथ चालीस युवक पकड़े गए जिनमें कन्हाईलाल दत्त, चारुचन्द्र राय, नरेन्द्रनाथ गोस्वामी, खुदीराम बोस, इन्दुभूषण राय और शैलेन्द्रनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं।

कलकत्ता के वकीलों ने परामर्श कर मुख्य अभियुक्त खुदीराम बोस की स्वीकारोक्ति को बदलवाने का भरसक प्रयास किये किन्तु अमर शहीद

अपने बयानों पर अडिग रहा, परिणामस्वरूप उसने फाँसी के फन्दे को हँसते-हँसते चूम लिया।

सभी क्रांतिकारी अलीपुर जेल में बंदी थे। राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों की सुनवाई से पूर्व नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक युवक मुखबिर बन गया और श्री अरविन्द को जेल से निकालने के सभी उपाय विफल हो गए।

नरेन्द्रनाथ की सुरक्षा के लिए पुलिस ने उसे एक अस्पताल में भिजवा दिया किन्तु बंगाल के क्रांतिकारी अपने प्रथम विश्वासघाती को जीवित बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। दो साहसी युवक अपनी जान की बाजी लगाकर अस्वस्थता का बहाना कर जेल से अस्पताल पहुँच गए। कन्हाई लाल ने निशाना साध कर नरेन्द्रनाथ पर गोली दागी। वह आहत होकर कुछ दूर भागा किन्तु सतर्क सत्येन्द्रनाथ की गोली खा धराशायी हो गया। कन्हाई लाल ने तभी उसे मौत के घाट उतार दिया।

इन विप्लवकारियों का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया जब ये आजादी के दीवाने 10 नवम्बर, 1908 को 'वन्देमातरम्' के जयघोष के साथ फाँसी पर लटक गए।

शेष क्रांतिकारियों पर विचकृष्ट की अदालत में जब मुकदमा चला तो वारीन्द्रकुमार घोष और उल्लासकर दत्त को प्राणदंड दिया गया।

इन्दुभूषण राय, विभूतिभूषण सरकार, हेमचन्द्र दास, अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य, उपेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, सुधीरकुमार सरकार, ऋषिकेश, कांजिलाल, इन्दुनाथ नन्दी, वीरेन्द्रचन्द्र सेन और शैलेन्द्रनाथ वसु को आजन्म कालेपानी की सजा सुनाई गई।

शिशिर कुमार घोष, निरापद राय और परेशचन्द्र मौलिक को 10 वर्षों का कालेपानी का दंड दिया गया। सुशीलकुमार सेन को 7 वर्ष की कालेपानी की सजा हुई। कृष्ण जीवन सान्याल को सश्रम 1 वर्ष का कारावास दिया गया। श्री अरविन्द घोष शेष लोगों के साथ दोषमुक्त कर दिए गए।

हर व्यक्ति अपने अमूल्य प्राणों की बाजी लगा देश की गुलामी से मुक्ति पाने का इच्छुक था। अनुशीलन समिति का प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु का सामना करने के लिए हर क्षण तैयार था। अर्थाभाव व शस्त्रागार की कमी पूरा

करने के लिए नियोजित ढंग से डकैतियाँ डालने में कोई संकोच नहीं था। बंगाल के कार्यकलाप के साथ चन्दन नगर के सम्पर्क सूत्रों की गणना एक ही माने जाने लगी। इसलिए ब्रिटिश गुप्तचर विभाग की नजर सभी पर थी किन्तु फ्रेंच सरकार के हस्तक्षेप के कारण संरक्षण वहीं सुरक्षित था।

रासबिहारी वसु के सहयोग से जहाँ पार्थसारथी के जुड़ने से मद्रास की गतिविधियाँ बढ़ीं उन्हीं के अथक परिश्रम से बम्बई और पंजाब भी चन्दन नगर के निकट आ गए। संघ के किशोर मोहन सापुई फ्रांस से रिवाल्वर खरीद की पूरी व्यवस्था कराते। यह विप्लव केन्द्र मतिलाल राय के चन्दन नगर स्थित मकान में था जहाँ अस्त्र-शस्त्रों के प्रचुर भंडार के साथ बम बनाने का गुप्त अड्डा भी था। त्रिपुरा, ढाका, फरीदपुर, बेटी-शाल आदि विप्लव केन्द्र भी सुदृढ़ हो चुके थे क्योंकि कलकत्ता के क्रान्ति-कारी अधिक क्रियाशील थे। अनुशीलन समिति की एक शाखा चटगाँव में भी खोल दी गई जिससे क्रांतिकारियों को खुले समुद्री तट के एकान्त वातावरण का अधिकाधिक लाभ सुगमता से उन्हें प्राप्त हो जाता और पकड़-धकड़ से भी बचाव पूरा था।

एक सप्ताह तक स्वामी विवेकानन्द का भाषण सुनने के पश्चात् उन्हें अनुभूति हुई जैसे साक्षात श्रीकृष्ण उन्हें अपने बाहुपाश में घेरे हैं।

उत्तरपाड़ा में भाषण करते हुए उन्होंने यह रहस्योद्घाटन किया कि जेल के हत्यारे बदमाशों के बीच नारायण ने उन्हें दर्शन दिए। जेल के अधिकारियों से उन्होंने स्वयं कहा—'इन्हें जेल की काल कोठरी में बहुत कष्ट है कम-से-कम सुबह-शाम आधे-आधे घंटे कोठरी से बाहर टहलने की आज्ञा अवश्य दी जाए।'

'मुझे नारायण के माध्यम से जब आज्ञा मिल गई तो टहलते समय मेरे शरीर में भगवान की शक्ति ने प्रवेश किया। उस समय मैं जेल की काल-कोठरी के सामने पेड़ की शाखाओं के नीचे टहल रहा था तो लगा वासुदेव मुझे घेरे हैं अपनी छाया तले। जिधर नजर डालता अपने सम्मुख श्रीकृष्ण ही नजर आते।

'स्वयं नारायण सन्तरी बने पहरा दे रहे थे। जब मैं पलंग की जगह

मिले मोटे कम्बलों पर लेटा तो आभास हुआ मेरे सखा और प्रेमी श्रीकृष्ण मुझे अपनी बाहुओं में लिए हैं। मैंने जेल में बन्दी कैदियों, चोरों, हत्यारों और बदमाशों पर जब दृष्टि डाली मुझे वासुदेव ही दृष्टिगोचर हुए।' इस प्रकार अलीपुर जेल उनके लिए योग साधना का मन्दिर बन गया था।

साधना का रहस्य खोलते हुए उन्होंने स्पष्ट किया—'सच्ची आराधना का अर्थ है—भगवान की पूजा करना, भगवान के साथ प्रेम करना, उनका जप जपना, प्रार्थना करना, उसके पाने की प्रबल चेष्टा करना।'

'साधना का अर्थ है—समाधि के अन्दर चले जाना, अपनी चेतना को अभ्यन्तर में केन्द्रित करना; ध्यान, तपस्या और आराधना सभी साधना के अंग हैं। भगवान और भगवान की कृपा पर सदा विश्वास रखो। जो प्रभु की ओर चलते हैं, उसके इशारे पर चलते हैं, उसका भार स्वयं नारायण ग्रहण कर लेते हैं। अगर कोई भगवान को चाहे तो भगवान स्वयं उसके हृदय को शुद्ध करने का भार वहन करेंगे, उसकी साधना विकसित कर उसे आवश्यक अनुभूति प्रदान करेंगे। विश्वास के अनुपात में ही अनुभूति की मात्रा स्वतः बढ़ती है।'

'जब तक जीवित हो, पृथ्वी को स्वर्ग मानकर जीओ। साधना के साथ सत्य के लिए प्राण, मन और शरीर की कठिनाइयों पर, अन्तरात्मा की अन्तिम विजय पर विश्वास करो, तब प्रभु का मिलना असम्भव नहीं रह जाएगा। अगर कोई भगवान पर विश्वास रखते हुए मन से उसे अपने-आप को समर्पित कर दे, उसी के हाथों अपने को सौंप दे, तब भगवान उसकी कठिनाइयां दूर करते हुए निश्चय ही कल्याण करेंगे।'

उनके कानों में क्रांतिकारियों के फांसी पर चढ़ते समय मुँह से निकलने वाली ओजस्वी वाणी सदा गूँजती रहती—

'सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखते हैं जोर कितना बाजुए कातिल में है।'

अरविन्द अब ब्रिटिश सरकार की आँखों की किरकिरी बन अधिक परेशान करने लगे, क्योंकि बंगाल का आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। देश उस समय दो विचारधाराओं में विभक्त हो गया। नरम दल आजादी अहिंसा से प्राप्त करने का हिमायती था जबकि गरम दल की मान्यता थी

कि भारत जैसे बड़े पराधीन देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में रक्तपात की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यदि कोई दुर्घटना घटती भी है तो उस पर अधिक ध्यान देकर विचारने की आवश्यकता नहीं। हमें आजादी चाहिए, चाहे किसी भी कीमत पर हमें वह प्राप्त करनी पड़े—इसे प्राप्त करना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है।'

एक दिन भगिनी निवेदिता ने उन्हें सूचित किया कि सरकार उन्हें देश से निकालने की योजना बना रही है। किसी ने संदेश दिया, पुलिस गिरफ्तार करने वाली है।

तभी श्री अरविन्द दैवी संकेत मिलते ही 10 मिनट में तैयार हो तत्काल एक नाव पर सवार हो चन्दन नगर पहुँच गए। उन्हें लगा भगवान की उन पर विशेष कृपा है।

4 अप्रैल, 1910 को उन्हें चन्दन नगर छोड़ पांडिचेरी में शरण लेनी पड़ी जहाँ रहकर अनुभव किया कि भगवान ने भारत की स्वतंत्रता का भार अपने ऊपर ले लिया है इसलिए वहीं उन्होंने निवास करना पसंद किया। 29 मार्च, 1914 को श्री माँ भी फ्रांस से भारत आयीं और 15 अगस्त से 'आर्य' का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया गया।

पांडिचेरी पहुँचने के पश्चात् वे सांसारिक कार्यों से दूर रहकर आत्मा की खोज करने में जुट गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक योगाभ्यास के माध्यम से परमात्मा से साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त कर ली।

देश-विदेश के लोग दर्शनों हेतु आने लगे। एक फ्रांसीसी दम्पति ऐसा भारत आया कि अरविन्द के चरणों पर निछावर हो गया। आगे चलकर यही महिला आश्रम की आत्मा बनी जिन्हें संसार बड़े स्नेह से 'मदर' कहकर सम्बोधित करता है।

उन्होंने देशबन्धु चित्तरंजन दास को 1922 में योग के संदर्भ में स्पष्ट रूप से लिखा—'अध्यात्म ही कर्म तथा जीवन का सच्चा आधार है। अध्यात्म का अर्थ है एक नवीन चेतना का विकास, वह केवल योग से ही किया जा सकता है।'

'जीवन एक योग है जिसकी तीन सीढ़ियाँ एक के बाद एक हर मनुष्य

को पार करनी आवश्यक हैं। ये चमत्कारी सीढ़ियाँ हैं—शारीरिक जीवन, मानसिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी आत्मा को विकसित कर परमात्मा से साक्षात्कार करने की अवश्य चेष्टा करे।'

इस प्रकार 1926 के 24 नवम्बर को महर्षि अरविन्द ने अति मानव की स्थिति को उपलब्ध कर लिया।

योगी अरविन्द ने अपना आध्यात्मिक मौन द्वितीय महायुद्ध में नाजीवाद के विरुद्ध और 1945 में स्टेफर्ड क्रिप्स के भारत-आगमन के समय अवश्य तोड़ा।

उनका विचार था कि 'क्रिप्स-आफर' यदि हम स्वीकार कर लेते हैं तो भारत का विभाजन रुक सकता था। उन्होंने देश को चीनी आक्रमण से और बँगला देश के संदर्भ में अपनी भविष्यवाणी से अवगत करा दिया था। 15 अगस्त, 1947 को अपने जन्मदिन के अवसर पर आकाशवाणी संदेश में उन्होंने भारत के लिए 5 लक्ष्यों की घोषणा भी की।

ऐसे महान योगी ने 5 दिसम्बर, 1950 में नश्वर संसार त्याग महासमाधि ले ली।

लौह-पुरुष सरदार पटेल
[1875-1951 ई०]

गुजरात के करमचंद नामक गाँव में 31 अक्तूबर, 1875 को श्री झबेर भाई के घर में सरदार पटेल का जन्म हुआ था। उनके पिता लवा जाति के वंशजों में थे जो बड़े ही निर्भीक, वीर और अदम्य उत्साही मनोवृत्ति के धर्मपरायण, सच्चे अर्थों में भगवान के उपासक थे। वे बड़े ही तेजस्वी, सहृदय, भावुक और असीम शक्तिसम्पन्न व्यक्ति थे जिन्होंने सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों की विदेशी सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध जम कर लोहा लिया था।

बालक बल्लभभाई बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि, सहृदय, दयालु, निर्भय और स्वाभिमानी था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की किन्तु पढ़ने में रुचि होने के कारण अपने सहपाठियों में अग्रणी ही रहते। विद्यार्थी जीवन में वे बड़े ही स्पष्टवक्ता, मेधावी, भावुक, तेजस्वी और निडर थे। राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीयता का पाठ उन्होंने अपने पिता से पढ़ा था जिनके अंकुर जन्म से ही संस्कार के रूप में उन्हें विरासत में प्राप्त हुए थे।

एक दिन बीज गणित के शिक्षक को एक प्रश्न का हल करते समय विद्यार्थियों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ देख एक साहसी बालक का स्वर क्लास में गूंजा—'सर, आप इस प्रश्न को हल नहीं कर सकेंगे, कठिन है।'

तत्काल मुड़कर उत्तेजना-भरे स्वर में शिक्षक बोला—'तुम ही कर डालो, मेरी जगह अध्यापन कर दिखाओ।'

साहसी-निडर छात्र अपनी कुर्सी से उठा, ब्लैकबोर्ड पर प्रश्न का सही हल निकाल कर बड़े स्वाभिमानी मुद्रा में अध्यापक की कुर्सी पर आसीन हो गया। बच्चे कक्षा में खिलखिलाकर हँस पड़े। शिक्षक क्रोध से आग बबूला हो कक्षा छोड़ बाहर निकल गया। विद्यार्थीगण थोड़ी देर पश्चात् अपने कार्य में जुट गये।

बालक को इस धृष्टता के लिए हेडमास्टर के कमरे में उपस्थित होना पड़ा। छात्र निर्भीकता से मौन सामने खड़ा था, अडिग और शान्त मुद्रा में।

हेडमास्टर ने बच्चे से अनुशासनहीनता के संदर्भ में प्रश्न किया—'क्लास में तुमने ऐसा अभद्र व्यवहार क्यों किया ?'

बालक ने उत्तर दिया—'यह असत्य है। मैंने जो कुछ किया अपने आदरणीय अध्यापक के आदेशानुसार ही कार्य किया है।'

हेडमास्टर ने क्रोधित स्वर से कहा—'ऐसा व्यवहार विद्यार्थी को करना उचित नहीं था। भविष्य में ऐसा कभी न करना अन्यथा स्कूल से बाहर निकाल दिए जाओगे।'

बालक के हृदय को आघात पहुँचा। हेडमास्टर के आदेश सुनकर उसका चेहरा तमतमा उठा, आँखों में खून उतर आया। वह शान्त न रह सका। क्रोध को संयमित कर उसने ऊँची आवाज में कहा—'आपको ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, मैं स्वयं ऐसे स्कूल को त्याग देना ही उचित समझता हूँ।'...और उस प्रतिभाशाली छात्र ने उसी समय उस स्कूल का परित्याग कर दिया सदा के लिए।

यही वीर बालक आगे चलकर सरदार बल्लभ भाई पटेल कहलाया जिन्हें लोगों ने प्यार से कहा—लौह-पुरुष पटेल।

बल्लभभाई ने हाई स्कूल की परीक्षा नड़ियाद हाईस्कूल से ही उत्तीर्ण की और पारिवारिक-आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने के फलस्वरूप कालेज की पढ़ाई से मन हटा कर मुख्तारी परीक्षा पास कर डाली।

इसी दौरान उन्हें वैवाहिक बन्धनों में बाँध दिया गया और इस प्रकार पारिवारिक जीवन की गाड़ी चलाने के लिए मुख्तारी करना प्रारम्भ कर दिया। इसी दौरान उनकी दो सन्तानों ने जन्म लिया। पुत्र का नाम था

डाह्याभाई पटेल और सुपुत्री कुमारी मणिबेन पटेल।

अदालत में खड़े वल्लभभाई पटेल हत्या के अभियुक्त की पैरवी करते हुए बड़ी तन्मयता से बहस कर रहे थे तभी संदेशवाहक ने कोर्ट में एक तार पकड़ाया। एक क्षण रुक नेत्र तार की पंक्तियों को पढ़ मस्तक पर उभरे भावों को छुपा तार मोड़कर जेब में रख पुनः अपनी बहस में तेजी से जुट गए। सायंकाल वकील साथी अचानक तार के संदर्भ में जब जानने को उत्सुक हुए तो एक लम्बी साँस ऊपर खींचते हुए उन्होंने कहा—'पत्नी का निधन हो गया। बेचारी...'

'क्या...?' आश्चर्य-भरे स्वर में सहयोगियों ने पूछा—'और आप कचहरी में बहस करते रहे!'

'वह तो मर गई, बेचारे अभियुक्त को फाँसी हो जाती मैं यदि असावधानी बरतता। वह तो अब बच सकता है।' दृढ़ निश्चयी पटेल ने फीकी मुस्कान होंठों पर भरते हुए कहा था। उस समय उनकी उम्र 33 वर्ष की थी जब उनकी पत्नी का बम्बई के एक अस्पताल में प्लेग से पीड़ित होने के कारण सन् 1908 में अचानक देहावसान हो गया था। उन्होंने जैसे अभियुक्त की जीवन रक्षा के लिए अपने खून के आँसू पी लिए थे।

बैरिस्टरी पढ़ने के लिए सन् 1913 में उन्होंने लंदन जाने की ठान ली। विदेश प्रवास में भी उन्होंने सादा और सरल जीवन व्यतीत करते हुए बैरिस्टरी की परीक्षा को ससम्मान सर्वप्रथम रहकर छात्रवृत्ति सहित उत्तीर्ण करने का गौरव प्राप्त किया।

जब वे विदेश से भारत लौटे तो कानूनी व्यवसाय के लिए अपना कार्यक्षेत्र अहमदाबाद को ही चुना जहाँ अपने श्रम और लगन के फलस्वरूप थोड़े ही समय बाद नगर में अभूतपूर्व ख्याति अर्जित करते हुए वहाँ के लब्धप्रतिष्ठ कानूनी विशेषज्ञों की अग्रणी श्रेणी में गिने जाने लगे। इस प्रकार उन्होंने अहमदाबाद में रहकर अपनी पारिवारिक आर्थिक स्थिति को धनोपार्जन के माध्यम से भी सुदृढ़ कर लिया क्योंकि उनके ज्येष्ठ भ्राता भी बम्बई में बैरिस्टरी कर रहे थे। वे चाहते थे कि वल्लभभाई बैरिस्टरी में जमे रहें और उन्हें जनसेवा करने का अवसर मिल सके। वल्लभभाई ने सहर्ष अपने बड़े भाई के आदेश का पालन करते हुए स्वतन्त्र रूप

से गृह-कार्यों के प्रति सजग रहे। साथ ही वे देश में उठती हुई तूफानी गर्म हवाओं से परेशान हो उठते। भारत माँ बन्दी है, गोरी सरकार जनता पर जुल्म करती है।

अचानक वे बीमार पड़े, बगल में एक फोड़ा निकला जिसके उपचार के लिए नाई के माध्यम से उसे गर्म सलाख से दागना आवश्यक समझा गया। नाई ने सलाख को गर्म किया तो परिजन और पास खड़े दयालु दर्शकों को भयातुर हो काँपते देख उन्होंने कहा—'अरे, यह सलाख ठण्डी क्यों करते हो, चीरा लगाओ' नाई ने काँपते हाथों से फोड़ा चीरा किन्तु पीब नहीं निकली। उन्होंने नाई से गर्म सलाख तत्काल छीन ली और स्वयं ही अपने हाथों से उस फोड़े में प्रवेश करा चारों ओर सलाख घुमाकर पीब बाहर निकाल दिया—मुँह से उफ तक नहीं की। मौन हो सारी पीड़ा वक्षस्थल में ही समेट ली उस कठोर हृदय साहसी ने क्योंकि विलम्ब से कार्य करने की जीवन में कभी आदत नहीं डाली।

महात्मा गांधी ने 1916 में देश में बेगार की कुप्रथा को समाप्त करने के लिए एक सम्मेलन गोधरा में आयोजित किया। एक कमेटी का जब चयन हुआ तो वकील युवक बल्लभभाई को मन्त्री चुना गया। अध्यक्ष गांधी जी जब चम्पारन जाने लगे तो उन्हें पूर्णरूपेण सारे कार्य उनकी अनुपस्थिति में देखने पड़े। उनकी प्रेरणा और अथक परिश्रम के फलस्वरूप वहाँ की बेगार प्रथा का अंत हो गया। थोड़े समय के पश्चात् उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन लखनऊ में भी महान उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए महात्मा गांधी के संदेश को नगर-नगर और गाँव-गाँव में प्रसारित करने का संकल्प ले लिया। वे मौन तो रहते किन्तु उनका मौन क्रियाशील होकर ज्वालामुखी का रूप धारण कर लेता और विजय श्री प्राप्त किए बगैर चरण राह में रुकते नहीं थे।

महात्मा गांधी का मन किसानों की दुर्दशा पर बड़ा ही चिन्तित था। किसानों की सुरक्षा के लिए सन् 1918 में उन्होंने जब सत्याग्रह का बिगुल बजाया तो बल्लभभाई लोक सेवा के कार्य में पूर्णरूपेण उतर आये। उनका साहसिक अथक परिश्रम रंग लाया जब देश में कृषक समुदाय विजयी हुआ। खेड़ा सत्याग्रह के पश्चात् रौलट कानून के विरोध में अपनी आवाज

ही बुलन्द नहीं की उन्होंने पंजाब के बीभत्स हत्याकांड के विरोध में महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिए सम्पूर्ण भारत को संगठित रख घर-घर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और खद्दर पहनने के लिए जन-जन को प्रोत्साहित किया।

जब गांधी जी जेल चले गये तो उन्होंने गुजरात में असहयोग आंदोलन की आग बुझने नहीं दी। गोधरा में जब प्लेग फैली तो अदालत के नाजिर का बेटा रोग का शिकार हुआ। उसकी देखभाल जी-जान से की किन्तु वह नहीं बचा। खुद प्लेग से पीड़ित हो वापस लौट कर आनन्द सपत्नीक आ पहुँचे। प्लेग की गाँठ बगल में निकली।

पत्नी को करमसद जाने की सलाह दे वे नड़ियाद के लिए अस्वस्थता में ही रवाना हो गये कि वहीं रहकर स्वास्थ लाभ हो जाएगा। सन् 1921 में वे गुजरात प्रदेश के कांग्रेस अध्यक्ष बनाए गये।

अंग्रेजों के अत्याचार राष्ट्रव्यापी तौर पर बढ़ने लगे। विदेशी सरकार ने भारतीयों पर विद्रोहियों को आश्रय देने के अपराध में लोगों को बड़े-बड़े आर्थिक दंड सुनाये। सन् 1922 में सत्याग्रह की ज्वाला में बोरसद फिर उबल पड़ा। सरदार ने सक्रिय भूमिका निबाहते हुए सरकार का तीव्र विरोध किया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों को सारे दंड क्षमा करने पर बाध्य होना पड़ा।

बल्लभभाई 1924 को अहमदाबाद नगर पालिका के अध्यक्ष चुने गये। निरंतर 4 वर्षों तक वे नगर की शिक्षा, सफाई और सेवा में रुचि लेकर व्यापक सुधारों में जुटे रहे। जुलाई मास 1927 में अहमदाबाद में अचानक बाढ़ आ गई। मूसलाधार वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। नगर सात दिन पानी में डूबा रहा तो पालिकाध्यक्ष घर पर चैन से कैसे बैठ पाता ? रात 12 बजे ही तूफानी रात को अकेले निकल अपने मित्र कापड़िया को साथ ले जलप्लावन का भयंकर विनाशकारी दृश्य देख सारे नगर की परिक्रमा कर इंजीनियर के साथ 4 दिन 4 रात निरन्तर जुटे रहे कि किसी भी प्रकार अहमदाबाद की पानी से रक्षा की जाये। प्राणों की बाजी लगा कर मजदूरों और सहयोगियों ने कन्धे से कन्धा मिला कर नगर को बचा लिया। जीवन में कठिनाइयों से जूझना सीखा था हार नहीं

मानी।

नागपुर झंडा सत्याग्रह के नेता सेठ जमना लाल बजाज को सहयोग देने के लिए आन्दोलन में तत्काल वे भी कूद पड़े।

सन् 1928 में विदेशी अंग्रेज सरकार ने किसानों की दुर्दशा का ध्यान न रखते हुए जब एक चौथाई अतिरिक्त कर लगान में और बढ़ाया तो किसानों ने आपसे सत्याग्रह के संदर्भ में सलाह ली। उन्होंने धैर्यपूर्वक सुना और किसानों से संघर्ष के लिए सभी कुछ बलि चढ़ाने के लिए लोगों का आवाहन किया।

किसानों को जब एकमत देखा तो उन्होंने बारडोली सत्याग्रह का स्वयं नेतृत्व किया। लगान रोकने पर सरकार की दमन नीति दहक उठी। लोगों की जमीनें जब्त हुईं, कारागार की सींखचों में लोगों ने जेल काटी। असंख्य कर्मचारियों को उनकी सेवाओं से बहिष्कृत किया गया किन्तु सरकार के नेतृत्व ने सत्याग्रहियों को इतना प्रोत्साहित किया कि उनके सम्मुख सरदार को झुककर घुटने टेकने पड़े। विजयश्री सरदार पटेल को मिली—कारागार से सभी बन्दी मुक्त किए गये, हड़पी जमीनें वापस मिलीं और बर्खास्त कर्मचारी पुन: पदारूढ़ हुए। देश में सरदार पटेल का नाम चमक उठा।

बारडौली सत्याग्रह से देश के भविष्य को एक नई दिशा मिली थी और सरदार शब्द ही विद्रोह और विजय का प्रतीक बन कर देश के वातावरण को सुगन्धित करने लगा। उन्होंने लोगों से बलपूर्वक कहा था—'राजसत्ता आज अत्याचारी है तो किसान का एक ही सीधा उत्तर है—जा—जा···होश में आ, हमने तुम्हारे जैसे कितने राज्य मिट्टी में मिलते देखे हैं। हम झुकेंगे नहीं, हमें न्याय चाहिये।'

उन्होंने तमाम जीवन में कभी बढ़-चढ़कर बातें नहीं कीं लेकिन जब कुछ कहा उसे पूरा करके ही दम लिया। जो भी कार्य हाथ में लिया उसी को फतह कर दिखाया। शत्रुओं की चुनौतियों का मुँह तोड़ उत्तर दिया, संघर्ष का दृढ़ता से मुकाबला किया, कभी समझौता नहीं किया। अब उन्होंने अधिकांश समय ही कांग्रेस के प्रचार में लगाना प्रारम्भ कर दिया।

सन् 1930 में जब पूर्ण स्वराज्य आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तो

उन्हें कारावास में दो बार दंड भुगतना पड़ा किन्तु अगले वर्ष करांची कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष बनाये गये।

गांधी जी गोलमेज सभा में भाग लेने जब लंदन रवाना हुए तभी इर्विन समझौते की शर्तें सरकार द्वारा ठुकराई गईं। विरोध स्वरूप कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का निर्णय लिया तो सरदार पटेल को ही संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष पद पर चुना गया। लगभग सभी प्रान्तों में कांग्रेस की विजय हुई।

सभी मन्त्री-मण्डलों का संचालन उन्होंने बड़ी निर्भीकता और योग्यता से किया जो वास्तव में सराहनीय था। तभी द्वितीय महायुद्ध की चपेट में विश्व फँस गया। कांग्रेस ने अंग्रेज सरकार को सहयोग करना उचित नहीं समझा इसलिए कांग्रेसी मन्त्रीमण्डल ने त्यागपत्र दे 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का प्रस्ताव कार्य समिति द्वारा पारित कर दिया गया।

सारे भारत में विद्रोह की आग भड़क उठी। देश के सभी बड़े नेताओं के साथ सरदार पटेल को भी बन्दी बना कर जेल भेज दिया गया। तीन वर्ष के पश्चात् जब 'शिमला सम्मेलन' हुआ तो सरदार पटेल को कारागार से मुक्त कर दिया गया और उन्होंने भी उसमें भाग लिया। उनका वर्चस्व इतना उभरा कि अब प्रत्येक वार्ता एवं निर्णय उनकी सहमति बिना अधूरा-सा जान पड़ता।

वे सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे जिन्होंने आजीवन रुकना सीखा ही न था। उनकी चेतना, गति, दृष्टि और शरीर की धड़कती हर श्वास में विद्रोह की ज्वाला जल रही थी। एक ही लक्ष्य सामने था—'पूर्ण स्वराज्य भारत को चाहिए और यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे कोई भी हमसे छीन कर अपने पास सुरक्षित कदापि नहीं रख सकता।'

भारत स्वतन्त्र हुआ। अंग्रेजों को देश से जाना पड़ा किन्तु उन्होंने जाते-जाते ऐसी चाल चली कि भारत का विभाजन अपने देश के नेताओं को स्वीकारना पड़ा। मोहम्मद अली जिन्ना ने एक अलग मुस्लिम देश पाकिस्तान की नींव रख डाली।

देश में उन्मादी साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। ऐसा कोई नगर और प्रान्त शेष नहीं बचा होगा जहाँ के नागरिक हिंसा से अछूते बचे।

उस आंधी में असंख्य शिशु अनाथ हो गए, अबलाओं के सतीत्व लूटे गए, लोग मौत के घाट उतार दिए गए, अनेकों स्त्रियों के सुहाग मिट गए— स्थान-स्थान पर चीत्कार, कोहराम और भीषण नर-संहार हुए।

यह दर्दनाक दृश्य था भारत विभाजन का जहाँ की सड़कों पर अपने घर-द्वार लुटा कर आए लोग शरणार्थी बन गए। पूर्वी पाकिस्तान का नोआखाली इस प्रकार धधक उठा कि महात्मा गांधी स्वयं अकेले ही शरणार्थियों की करुण पुकार को सुन वहाँ पहुँच गए। भयावह रक्तपात अपनी आँखों से उनसे देखा न गया था।

सरदार पटेल विचलित न हुए, उन्होंने कहा—'सफलता विनाश में नहीं, निर्माण में है।' उन्होंने खंडित भारत के बिखरे टुकड़ों को जोड़ने का कार्य बड़ी कुशलता से संचालित किया। भूतपूर्व देशी राज्यों का एकीकरण आसान नहीं था। देश के विभाजन की त्रासदी स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा—'कुछ लोग कटाक्ष करते हैं कि कांग्रेस ने देश के टुकड़े करा दिए। यह एक सच तथ्य है। सब कुछ हमने काफी सोचने-समझने के बाद ऐसी जिम्मेवारी स्वीकार कर ली। किसी भी भय या दबाव के वशीभूत होकर यह निर्णय नहीं किया गया।

'सचमुच मैं हिन्दुस्तान को टुकड़ों में प्राप्त करने का कट्टर विरोधी था, किन्तु जब मुझे केन्द्रीय सरकार में बैठने का अवसर मिला तो ज्ञात हुआ कि उन्मादी साम्प्रदायिकता का विषैला जहर देश के चपरासी से उच्चाधिकारियों के कण-कण में व्याप्त हो चुका है। ऐसी दशा में साथ रह कर लड़ते रहने और फिर तीसरे पक्ष से बीच-बचाव कराने की आशा रखने से अलग हो जाना ही श्रेयष्कर रहेगा।'

स्पष्टवादिता ही उनके जीवन की सफलता का रहस्य थी जो उनके रोम-रोम में विद्यमान थी। भय से कभी प्रभावित वे नहीं हुए। अपने विरोधियों की आजीवन परवाह नहीं की। सत्य पर डटे रहे।

सरदार पटेल को कुछ लोग 'हिन्दू राष्ट्रवादी' भी कहते थे किन्तु वे कुरीतियों के पक्षपाती कभी नहीं रहे। जब देश में एक समय गोरक्षा आंदोलन ने जोर पकड़ा तो उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने विचार रखते हुए कहा— 'आज देश में बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों की रक्षा की समस्या ही हल नहीं

हो पा रही—गोरक्षा अभियान कहाँ तक न्यायोचित है ? भारत के अतिरिक्त जिन मुल्कों में गोकशी पर प्रतिबंध नहीं, हत्या की जाती है, वैसी हृष्ट-पुष्ट और दुधारू गायें हमारे देश में अभी तक नहीं पायी जातीं। यदि हमें गोरक्षा ही करनी है तो गाय को अच्छी तरह पालना तो पहले सीखना चाहिए।' इतनी कठोर और कड़वाहट-भरी वाणी का सही ढंग से उपयोग सरदार पटेल जैसे सत्यप्रिय और ईमानदार देशभक्त ही करने में सक्षम थे।

उन्होंने देश के राजा-महाराजाओं को 11 अगस्त, 1947 को स्पष्ट शब्दों में संकेत दे दिया था—'उन्हें 15 अगस्त तक भारतीय संघ में निश्चित रूप से आ जाना चाहिए। जो इस अवधि में स्वेच्छा से आ गया, वह आ गया। अन्यथा दूसरी तरह से बाद में हिसाब होगा। आज जो सुविधाएँ सशर्त मिलने जा रही हैं वे भविष्य में नहीं मिलेंगी। यदि मन में राज सम्हालने की आकांक्षा है, तो संघ में आ जाइए। संसार में अकेले चल लेना सरल नहीं, अत्यन्त कठिन है। तेज आंधी अकेले पेड़ को उखाड़ फेंकती है किन्तु जो वृक्ष दूसरों के बीच खड़े होते हैं उनको बचने में किसी प्रकार की असुरक्षा नहीं होती। इसलिए इस सुनहरी अवसर को हाथ से गँवाना बुद्धिमत्ता नहीं है।

'इस समय हिन्दुस्तान को एक सूत्र में बाँधने का अवसर हमें मिला है। आज लाहौर और पूर्वी बंगाल के थोड़े-से भाग को छोड़कर शेष बचे हिन्दुस्तान को एकता के सूत्र में पिरोने का मौका एक हजार वर्ष बाद हाथ आया है।'

उनके हृदय में शंकाओं और असमंजस के लिए कोई स्थान नहीं था और न कुनैन पर मीठा चढ़ा कर खाने की लालसा।

भारतीय जनता, राष्ट्रीय एकता के पथ-प्रदर्शकों और देश की महान आत्माओं के त्याग एवं बलिदान स्वरूप जब 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिली तो सरदार बल्लभ भाई पटेल को उप-प्रधान मंत्री बनाया गया। साथ ही उन्हें गृह एवं रियासतों का अतिरिक्त उत्तरदायित्व भी सौंपा गया।

सरदार पटेल ने अथक परिश्रम और साहस के बल-बूते 600 भारतीय

रियासतों के परम्परागत अस्तित्व को नष्ट कर उन्हें एकता के सूत्र में बाँधने का दुरूह कार्य कर अपनी विद्वत्ता और कुशलता का अभूतपूर्व परिचय दिया। ऐसी रक्तहीन क्रांति का उदाहरण संसार में अन्यत्र दुर्लभ दृष्टिगोचर होगा।

देश में मात्र हैदराबाद ही एक ऐसी रियासत बची थी जिसने भारत सरकार से 1 वर्ष का समय माँग कर समझौता किया। निजाम हैदराबाद की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। राज्य में हत्याओं, लूट-पाट, भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता की निरंतर वृद्धि ने सरदार पटेल को चिन्तित कर रखा था। निजाम को चेतावनी दी गई किन्तु उसने कोई ध्यान ही न दिया।

इस धृष्टता के फलस्वरूप सरदार पटेल ने बड़ी चतुराई एवं कुशलता के साथ 1 वर्ष बाद ही सितम्बर 1948 को सैनिक-कार्यवाही के माध्यम से केवल 3 दिनों में राज्य को निजाम के निरंकुश शासन से मुक्त कराके भारतीय संघ में बलपूर्वक मिला डाला।

ऐसा साहसिक कदम मात्र सरदार पटेल जैसे निर्भीक योद्धा ही उठा सकते थे—ऐसा इतिहासज्ञ मानते हैं। वे कर्त्तव्यनिष्ठ होकर मार्ग बनाकर अकेले ही चलते रहे और सफलता उनके चरण चूमती रही। रुक कर विश्राम करना उन्होंने जीवन में सीखा नहीं था। उनके विचारों में उग्रता तो थी किन्तु गांधी जी के दर्शन की अमिट छाप से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे भी अहिंसा के पक्षपाती थे।

देश में गांधी जी के महाप्रयाण के पश्चात् सरदार पटेल ने पूर्णतया सफल मार्ग दर्शन करते हुए राष्ट्रीय एकता का यह महान उपासक, 15 दिसम्बर, 1950 को हमसे सदा के लिए विदा हो गया जिसका नाम इतिहास में अमर रहेगा।

अमर सेनानी विनायक दामोदर सावरकर

[1883-1966 ई०]

क्रांतिकारी, देशभक्त, स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धा विनायक दामोदर सावरकर ने औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग ठुकरा कर देश को सम्पूर्ण स्वतंत्रता का मत्र दे आजीवन स्वधर्म और स्वराज्य की प्रेरणा द्वारा राष्ट्रीयता का प्रचार किया। 1938 में अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन, नागपुर के मंच से निर्भीकता-भरे स्वर में उन्होंने सिंह गर्जना की थी—'आज भारत को साहित्यकारों की आवश्यकता नहीं, फिलहाल बंदूक-धारियों की जरूरत है। अब समय आ गया है कि वे अब अपनी कलम छोड़ कर बन्दूक सम्हालें। अंग्रेजी साम्राज्य को भारत से तभी समाप्त किया जा सकता है जब जागरूक भारतीय युवक अपने बलिष्ठ हाथों में शस्त्र लेकर मरने-मारने को कटिबद्ध हो जाएँ। सशस्त्र क्रांति के द्वारा ही भारत की स्वाधीनता सम्भव है।'

ऐसे महान चरित्र नायक का जन्म 28 मई, 1883 को नासिक के निकटवर्ती देवलाली कस्बे के भागुर (महाराष्ट्र) नामक गाँव में एक सम्पन्न चितपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। गत 2 शताब्दियों से इसी बलिदानी वंश में 1857 के महान क्रांतिकारी योद्धा नाना साहेब पेशवा और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह की मशाल जलाने वाले वासुदेव बलवंत फड़के को पूना के अंग्रेज अधिकारी को गोली से उड़ाने के अपराध में मृत्यु दंड मिला था। उनके बचपन का नाम तात्या था। माता-पिता दोनों ही कृष्ण एवं रामभक्त थे। परिवार में सावरकर ने किशोरावस्था में ही

महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसे त्यागी वीर पुरुषों की गौरव गाथाओं को सुनते-सुनते हिन्दू धर्म में पूर्ण आस्था और निष्ठा रखने लगे थे। 10 वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत हो गया, थोड़े दिनों के उपरांत माँ राधाबाई का अचानक देहावसान हो गया। मन अशांत हुआ। तभी 1893 में बम्बई-पूना में भी साम्प्रदायिक दंगे भड़के। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे बन बैठे। अंग्रेज दोनों सम्प्रदाय के लोगों में धर्म की आड़ में जीवन में जहर घोल रहे थे।

चाफेकर बंधुओं के पूना में बलिदान से प्रभावित होकर किशोर सावरकर ने कुलदेवी के समक्ष प्रतिज्ञा की— 'मैं भारत माता की दास्य शृंखलाएँ तोड़ने के लिए अपना समस्त जीवन अर्पित करते हुए आमरण संघर्षरत रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं गुप्त संस्थाएँ खोलूँगा, शस्त्र निर्माण की विधि जान उन्हें बनाऊँगा और समय आने पर भारत माँ की रक्षा में हँसते-हँसते लड़ता हुआ मर जाऊँगा।'

1901 में सावरकर ने इन्ट्रेंस की परीक्षा पास की तभी भाऊराव चिपलूणकर की सुपुत्री यमुनाबाई से उनका विवाह सम्पन्न हो गया। 1902 में नासिक छोड़ पूना में फर्ग्युसन कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ कालेज के अन्य छात्रों को प्रेरित कर उन्होंने 'अभिनव भारत' नामक गुप्त संगठन की स्थापना कर डाली जिसका लक्ष्य था—'पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सशस्त्र विद्रोह की योजना कैसी हो?' 'केसरी' के सम्पादक लोकमान्य तिलक को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने कहा था—'···लगता है महाराष्ट्र में शिवाजी का पुनर्जन्म हो चुका है।'

फर्ग्युसन कालेज के प्राध्यापकों एवं अधिकारियों ने सावरकर की राष्ट्रीय भावना से कुपित होकर स्वदेशी आंदोलन में भाग लेने के आरोप में कालेज से निष्कासित कर दिया। परीक्षा फार्म पहले जा चुके थे अतः बम्बई विश्वविद्यालय की अनुमति मिल गई। परिश्रम के बल पर मेधावी सावरकर ने 1905 में बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर डाली। बम्बई में ही कानून की पढ़ाई में भी राजनीति के साथ रुचि लेनी शुरू कर दी।

सन् 1906 में सुप्रसिद्ध देशभक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा के पास शिवाजी

छात्रवृत्ति के माध्यम से बैरिस्टरी पढ़ने लंदन पहुँचे। 'भारत भवन' में उन्होंने वर्मा जी के सहयोग से अभिनव भारत की शाखा खोल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के लिए लंदन के निकट-वर्ती क्षेत्रों में सभाएँ आयोजित कर सशस्त्र क्रांति के महत्त्व को समझाया जिससे वैसी ही क्रांति भारत में की जा सके जैसी कि इटली, रूस, फ्रांस और अमेरिका आदि देशों में सफल हो चुकी है।

रूसी क्रांतिकारियों के सहयोग से सावरकर ने सेनापति बापट और हेमचन्द्रदास जैसे उत्साही नवयुवकों को बम निर्माण विद्या से निपुण होने के लिए भिजवाया और लन्दन से ही भारतीय क्रांतिकारियों को पिस्तौलों का पार्सल भिजवा कर उनका मनोबल ऊँचा किया जिससे भारत में सशस्त्र क्रांति का बिगुल बज उठा। उसी समय रूस, चीन, अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी के समाचारपत्रों में नए-नए लेख प्रकाशित कर भारतीय सैनिकों में भी स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत् करने की प्रेरणा दी। सावरकर ने दो पुस्तकें मराठी में लिखीं 'जोसेफ का आत्मचरित्र' और 'स्वातंत्र्य समर', 'स्वातंत्र्य समर' में स्पष्ट किया कि अंग्रेज लेखकों ने स्वाधीनता संग्राम को 'गदर' या 'लूट' के नाम से जो लिखा है वह 1857 का सिपाही विद्रोह नहीं 'भारतीय स्वाधीनता का प्रथम युद्ध' है।

1909 में बैरिस्टरी की परीक्षा उन्होंने उत्तीर्ण कर ली मगर सरकारी आदेश मिला कि प्रमाण-पत्र (सनद) वे तभी प्राप्त करेंगे जब लिखित आवेदन करें कि भविष्य में वे राजद्रोह की गतिविधियों में भाग नहीं लेंगे। उन्होंने बैरिस्टरी छोड़ देशभक्ति का परिचय दिया। पहले उन्हें कर्जन वाउली की हत्या में हाथ होने के आरोप में बंदी बनाया, बाद में छोड़ दिया। भारत वापिसी के लिए सरकार ने रोक लगा दी। वे पेरिस पहुँच गए। मैडम कामा का उन्हें साथ मिला। सरकार को पुनः संदेह हुआ तब उन पर राज-द्रोहात्मक आरोप युक्त वारंट द्वारा लन्दन रवाना कर दिया गया। भारतीय दंड विधान की धारा 121 अ का अभियोग लगा कर ब्रिस्टन जेल में बंद दिया गया। बाद में अंग्रेजों ने उनको भारत भिजवाने की व्यवस्था की उन्हें कड़े पहरे में मेरिया नामक जहाज से रवाना किया गया।

8 जुलाई, 1910 को प्रातःकाल मेरिया जलयान फ्रांस के मार्सेली

बन्दरगाह छोड़ आगे बढ़ा जा रहा था। सावरकर अपने नेत्रों में आजादी के सपने संजोए सागर की उफनती लहरों पर विचलित मुद्रा में हिचकोले खाते रहे। उनके मन में आया कि फांसी के फंदे पर लटक कर शहीद होने की अपेक्षा अंग्रेजों से लड़ कर मरना उत्तम है। उनका हृदय विद्रोह कर उठा। वे उठे और शौचालय जाने की इच्छा प्रकट की। पहरेदारों ने शौचालय तक पहुँचाया और वे बाहर प्रतीक्षा करने लगे दरवाजे के बाहर। तरुण सावरकर ने पोर्ट होल से फ्रांस के भयानक अथाह समुद्र में अचानक छलांग लगा डाली। प्रहरियों ने जल में तैरते हुए जहाज से जब यह दृश्य देखा तो गोलियों की बौछार की गई मगर वे फ्रांस के किनारे पहुँचने में सफल हो गए। वे फ्रेंच सैनिकों के हाथ लग गए किन्तु लोभी सैनिकों ने उन्हें अंग्रेजों की सुपुर्दगी में पहुँचा दिया। इसके पश्चात् कड़े पहरे में हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल भारत के बंदरगाह पर उतारा और नासिक पहुँचा दिया गया। विश्व के तमाम अखबारों में यह खबर आग की तरह फैल गयी। भारत के नागरिकों में असंतोष की आग भड़क उठी।

जैक्सन की हत्या के विचाराधीन निर्णय सुनाते हुए जज ने आजन्म कालेपानी की सजा सुनाते हुए कहा—'सावरकर जैसे खूंखार अपराधी को दो आजन्म कारावास अर्थात् 50 वर्ष तक कालेपानी में रखना अनुचित नहीं है।' उन्हें डोंगरी जेल से पहले भायखला जेल फिर थाना जेल भेजा जहाँ उनके भाई नारायण सावरकर को भी बंद कर रखा था। सन् 1911 में उन्हें अंडमान निकोबार महाराजा जलयान से पहुँचाया गया।

उनका स्वास्थ्य गिर रहा था। उनके सद्व्यवहार और जेल में किए सुधारों के कारण कुछ दिनों के पश्चात् गोरी सरकार ने उन्हें पत्नी के साथ रहने की अनुमति के साथ धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक सेवाओं की स्वतंत्रता दे दी। 10 मई, 1937 को उन्हें नजरबंदी से पूर्ण रूपेण मुक्त कर दिया। अहमदाबाद में जब हिन्दू महासभा का उन्नीसवाँ अधिवेशन हुआ इन्हें जनता ने सर्वसम्मति से सभापति चुना।

सच्चे अर्थों में वे महान समाज सुधारक थे। उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त मतांधता पर भी कठोर प्रहार कर लोगों में नव जीवन फूंका और समाज में पुजारियों, मठाधीशों और महन्तों द्वारा अपनाई जाने वाली कुरीतियों का

खुल कर विरोध किया।

हिन्दुत्व को उन्होंने कभी पंथ नहीं माना। उनके विचार में 'हिन्दू' शब्द सिन्धु का बदला हुआ एक रूप था। जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दुत्व' में किया है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के वे प्रबल पक्षधर थे बशर्ते बिना अनुचित पक्ष-पात दर्शाए समानता के आधार पर वे फले-फूले और आतंकवाद से दूर रहें। वे समझौतावादी कभी नहीं रहे। कांग्रेस 'हिन्दू महासभा' को साम्प्रदायिक संस्था बता कर सावरकर का विरोध करती इसीलिए महात्मा गांधी के विचारों से वे सहमत नहीं थे। अछूतों को हिन्दू मंदिरों में प्रवेश के द्वार खोले, शुद्धि एवं हिन्दू अधिकारों के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया।

आजादी मिलने के साथ ही 15 अगस्त, 1947 को भारत विभाजन हो गया।

सावरकर का हृदय टूट गया था किन्तु मन को मात्र इतनी प्रसन्नता अवश्य हुई कि भारत चाहे खंडित क्यों न हुआ—स्वतंत्रता तो किसी प्रकार से प्राप्त हो ही गई।

अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए उन्होंने यातनाएँ सहीं, कष्ट झेले, उपेक्षाओं और अपमान का हलाहल भी पान किया।

सन् 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध और रूस में ताशकंद समझौते से भी वे बहुत खिन्न हुए।

उन्होंने 80 दिन का उपवास रखकर 26 फरवरी, सन् 1966 को इस नश्वर संसार को त्याग कर मृत्यु को सहर्ष गले लगा लिया।

□□

DE PAUL SCHOOL Acc. No 1594

Class No. Book No

Author Gagdish Vidrohi

Title राष्ट्रीय एकता के महान शिल्पी

Borrower's No.	Due Date	Borrower's No.	Due Date
V B-1	2/12/96 9/12/96		
VII B-24	10/12/96 17/12/96		
VIII B-8	17/12/96 24/12/96		
X-B-1	10/6/25		

राष्ट्रीय एकता के महान शिल्पी

"काम के समान कोई दूसरा रोग नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान आग नहीं, और ज्ञान से बढ़कर कोई अन्य सुख नहीं। दुष्ट अथवा चुगलखोर और साँप में से सर्प की निकटता अच्छी है क्योंकि वह काल आने पर ही डसता है किन्तु चुगलखोर कदम-कदम पर कष्ट पहुँचायेगा।"

—महामात्य चाणक्य

Rs. 20/-

हि पा हिन्दी पॉकेट बुक्स

ई-५/२०, कृष्णा नगर, दिल्ली-११००५१

E-5/20, KRISHNA NAGAR, DELHI-110051